पॉपुलर एजुकेशन सीरीज़

कही पे निगाहें कही पे निशाना

प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण (संशोधन) बिल

सीमित वितरण हेतु
जनहित में प्रकाशित

प्रकाशक :
पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस)
ए–124/6, दूसरी मंजिल, कटवारिया सराय, नई दिल्ली–16
फोन व फैक्सः 011–26968121/26858940
ईमेलः peaceact@vsnl.com

दिसम्बर, 2010

मुद्रण :
डिजाइन्स एण्ड डाइमेंशंस
एल/5–ए, भोख सराय, फेज–2
नई दिल्ली 110017
9810686122

क्यों होती जा रही है ज़मीन बेशकीमती? ज़मीन की लूट प्रमुख एजेण्डा क्यों?

उदारीकरण–निजीकरण के खगोलीकरण की प्रक्रियाओं की तेज़ी ने मात्रागत तथा गुणात्मक– दोनों स्तरों पर विकास की अवधारणा में बदलाव किये हैं। विकास के मूल लाभार्थियों में जहां एक तरफ व्यापक एकजुटता दिख रही है वहीं पर इनमें मुनाफे, हिस्सेदारी तथा वर्चस्व को लेकर आंतरिक द्वंद भी दिखायी पड़ते रहते हैं। इसके नियंता बड़ी तेज़ी के साथ हिंसक, आक्रामक, अमानवीय और प्रकृति विरोधी हुए हैं– इस मसले पर उनकी प्रतिबद्धता में कोई अंतर नहीं है। मनुष्य का जीवन, सुख, आनंद तथा मानवीय मूल्य–सामूहिकता, भाईचारा बहनापा, प्रेम, पारस्परिक सम्मान, विभिन्नताओं का सम्मान, असहमतियों को स्थान और पारस्परिक सह–अस्तित्व, शांति, समानता आदि को विकास के एजेण्डे से न केवल बाहर रखा गया है बल्कि काफी हद तक इनको विकास में बाधक भी माना जा रहा है। विकास का अर्थ अनावश्यक एवं अवैज्ञानिक अधिसंरचनाओं के निर्माण कार्यों तक ही सीमित कर दिया गया है। यह अलग सवाल है कि अभी फौरी तौर पर जिसे विकास कहा जा रहा है उसका दूरगामी विकास से कोई रिश्ता है भी या नहीं? या विनाश की तरफ ले जाने की एक जानी–अनजानी प्रक्रिया है। विकास की इस प्रक्रिया से माल–मुनाफा अर्जित करने वाले इस बात से बेफिक्र नज़र आते हैं क्योंकि वे अपने द्वारा किये गये विनाश से भी मुनाफा कमाने के विशेषज्ञ हैं।

अनावश्यक एवं अवैज्ञानिक अधिसंरचनाओं के निर्माण को ही विकास मानने की अवधारणा के तहत उत्पादन इकाइयों (कल–कारखाने, एस.ई.ज़ेड.), कच्चे माल (माइनिंग), ऊर्जा (बड़े–बड़े बांध, प्राकृतिक गैसों–तेलों), संचार व्यवस्था (सड़क, रेल लाइन, हवाई अड्डे, बंदरगाह) तथा शहरों का विस्तार (मण्डी, बाज़ार, मॉल्स, गोदाम, होटल, फ्लाई ओवर, आवासीय कालोनियों) आदि के लिए हर कदम पर ज़मीनों की, नदियों के पानी की, प्राकृतिक खनिज पदार्थों, प्राकृतिक गैसों की ज़रूरत होगी। अतएव विकास की मलाई काटने के लिए वही ज़्यादा कारगर

होगा जिसके पास पूंजी के साथ–साथ ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीनों का मालिकाना हक होगा। अतएव ज़मीन दिन प्रतिदिन बेशकीमती होती जा रही है।

तमाम योजनाओं–परियोजनाओं की आड़ में पूंजीपति/उद्योगपति ज़रूरत से ज़्यादा ज़मीनें हासिल करने की हर तरह की जुगत में भी लगा हुआ है। इस जुगत में तथा उसका मुनाफा बढ़ाने में सरकारें भी अपनी शक्ति और सामर्थ्य का इस्तेमाल करने में नहीं चूक रही हैं। जिकरपुर (अलीगढ़) तथा करछना (इलाहाबाद) के उदाहरण सामने हैं जहां पर औने–पौने दाम में किसानों की अधिग्रहीत ज़मीन पर जे.पी. कंपनी को कई गुना दाम बढ़ाकर उन्हीं किसानों तक को जमीन बेचने का भी रास्ता साफ कर दिया गया है। करछना में किसानों को दिये गये मुआवजे की दर से 4 गुना मुनाफा कमाते हुए उ0 प्र0 सरकार जमीनें जे0पी0 कम्पनी को बेच रही है।

इसके साथ ही ज़मीन की भूख इसलिए भी बढ़ती जा रही है क्योंकि दुनिया के बड़े–बड़े पूंजीपति और उनके खेमे **ऐसे वित्त पर टिके हैं जो 'निर्गुण ब्रह्म' की तरह अदृश्य है। यह वित्तीय बुलबुले कब फूट जायेंगे इसका कोई भरोसा और सही आकलन भी मौजूद नहीं है।** हर महीने, हर साल आने वाले वित्तीय संकट से उबरने का कोई सुव्याख्यायित तरीका इस व्यवस्था के नियंताओं के पास न है और न हो सकता है। हाल में संयुक्त राज्य अमरीका के बंद होते बैंकों के दृश्यों को देखा गया है। आर्थिक मंदी, मुद्रास्फीति तो रोज रोज की सुर्खियां हैं। आप सोचें यदि **यह अदृश्य–पूंजी हमेशा के लिए अदृश्य हो जाय, यदि वित्तीय पूंजी का रंग–रोगन, ताम–झाम टूट–फूट जाय तथा बैंकिंग सेक्टर धराशायी हो जाय तो इस आर्थिक व्यवस्था की तथा अपनी पूंजी के हितों की रक्षा कैसे की जा सकेगी?** इससे प्रभावित होने की समस्या से सशंकित पूंजीपति वर्ग ने अपने बचाव के तरीकों के बारे में भी सोच–विचार कर कोई रास्ता ढूंढने की जुगत भिड़ा रखी है। वे इस बात के लिए बुरी तरह से आतुर हैं कि **इस अदृश्य वित्तीय पूंजी (जिसकी वफादारी का कोई भरोसा नहीं) को ''सब्सटेंशियल कैपिटल'' (टिकाऊ/स्थायी पूंजी) जिस पर भरोसा किया जा सकता है, में कैसे बदला जाय। इसके लिए वे ''फिज़िकल एसेट्स'' को कब्ज़ाने की होड़ में लग गये हैं। इस तरह के एसेट्स**

में ''भूमि'' एक बेहतर विकल्प है। अतएव ज़मीनों पर कब्ज़ा करना आज पूंजीपति वर्ग के लिए बाध्यता बन गयी है। इसके अलावा उन्हें अपनी पूंजी बचाने तथा मुनाफा बढ़ाने का कोई रास्ता फिलहाल नज़र नहीं आ रहा है। इसीलिए ज़मीन की भूख बढ़ती जा रही है।

भूमि आज 'ग्लोबल कम्युनिटी' की होती जा रही है। 'वित्त' की स्थितियाँ तो घटती–बढ़ती रहेंगी, परंतु भूमि की कीमत तो लगातार बढ़नी ही है। अतएव भूमि का ज्यादा से ज्यादा मालिकाना आज बाजार की 'डायनेमिक्स' है। अतएव आज की तथाकथित वैश्विक पूँजी पूरी की पूरी जमीन को बाजार के हवाले करके न केवल अपने मुनाफे को बढ़ाने पर आमादा है बल्कि 'वित्तीय संकटों' से प्राणरक्षा के लिए भी इस फार्मूले को आज की तारीख में सही मान रही है। इसीलिए बाजार पर अपना पूर्ण वर्चस्व बनाते हुए विश्व पूँजी ने ऐसी परिस्थितियां पैदा कर दी हैं कि उसके दबाव में, जो स्वाभाविक रूप में उसी के हित में होंगे, भूमि कानूनों में तेजी के साथ बदलाव कराये/किये जा रहे हैं।

इसीलिए जहां किसी परियोजना या कारखाने के लिए 5 हेक्टेयर ज़मीन की ज़रूरत है वहां पर भी 50 से 100 हेक्टेयर ज़मीन की मांग की जाती है और सरकार की कृपा से मिल भी जाती है। सैकड़ों साल पुराने कई ऐसे कारखाने भी हैं जिनके पास इतनी फालतू ज़मीन है कि वे अपने पुराने कारखाने में ही एस.ई.ज़ेड. की स्थापना करने की सोच रहे हैं।' 'मैनुफैक्चरिंग'' के स्थान पर आज पूंजी के निशाने पर भोजन, पानी, दवा तथा शिक्षा आ गये हैं। भोजन के व्यापार तथा खाद्यान्न के व्यापार के लिए एस.ए.ज़ेड. (स्पेशल एग्रीकल्चर ज़ोन), कारपोरेट फार्मिंग (जिसकी झलक गंगा एक्सप्रेस वे तथा यमुना एक्सप्रेस वे परियोजनाओं से मिल रही है), पानी के लिए बड़े–बड़े बांधों तथा नदियों पर नियंत्रण, स्वास्थ्य के धंधे के लिए जंगलों–पहाड़ों में जड़ी–बूटियों का उत्पादन तथा शिक्षा से मुनाफा कमाने के लिए बड़े–बड़े स्कूल–कालेज–इंस्टीट्यूट्स तथा विश्वविद्यालय की स्थापना। इन सारे कार्यों के लिए ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीनों की ज़रूरत पड़ रही है अतएव ज़मीन बेशकीमती होती जा रही है।

इन परिस्थितियों में दो स्पष्ट ध्रुव बनते जा रहे हैं पहला वह जिसने खाना, पानी, दवा और शिक्षा तक को पूंजी के निशाने पर रखा है तथा दूसरा वह

जो अपनी ज़मीन, खेती, नदी, पानी की रक्षा के लिए तथा अपनी छिनती जीविका–छिनते अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष के रास्ते पर है। इन दोनों ध्रुवों के बीच जारी **द्वंदात्मक संघर्ष में समाज में मौजूद ताकतें, नीतियां, कानून निरपेक्ष नहीं हो सकते। इसी पैमाने पर भूमि–अधिग्रहण अधिनियम के प्रस्तावित संस्करण को भी परखना उचित होगा।**

इस तरह के कानून एक सुनिश्चित राजनीतिक–आर्थिक–सामजिक व्यवस्था की उपज होते हैं। इसका विश्लेषण अपनी पसंद–नापसंद, नेताओं के व्यक्तित्व की विशिष्टताओं के आधार पर करके हम जो भी निष्कर्ष पायेंगे उसके भ्रामक बने रहने की पूरी संभावनायें रहेंगी। इससे कोई विशेष अंतर नहीं पड़ने वाला कि **कौन सा कानून औपनिवेशिक दौर में बना और कौन सा स्वतंत्र भारत में बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि कानून का उद्‌देश्य क्या है और इसका व्यापक आबादी पर क्या प्रभाव पड़ने वाला है?** ऐसे लोगों कि कमी नहीं जो "सार–सार को गहि रहे थोथा देय उड़ाय" में पूरा विश्वास रखते हैं परंतु थोथे में से सार ढूंढना किसी दिव्य आत्मा के ही बस की बात हो सकती है। आज यही हो रहा है जिसे लोग 'थोथा' कह रहे हैं उसे इस व्यवस्था के नियंता **'सार' सिद्ध करने में लगे हैं।**

बाज़ार की तर्ज पर आज नये–नये कानून बनाये जा रहे हैं 'एक खरीदो एक मुफ्त में पाओ'। भूमि अधिग्रहण को मानो, आर. आर. पालिसी को मुफ्त में पाओ, वनों के बाहरी हिस्से में आओ पट्‌टा मुफ्त में पाओ, अपनी ज़मीने खाली कर दो कलिंगनगर में टाटा से मुफ्त में आवास, बिजली, पानी, भोजन पाओ–लांजीगढ़ में अनिल अग्रवाल से मुफ्त में पाओ। विकास लो, जल जंगल ज़मीन दो–मुआवजा लो नहीं तो आपरेशन ग्रीन हण्ट के लिए तैयार रहो।

इतना ही नहीं जमीन कब्जाने के तमाम नये–नये लोकलुभावन तरीकों/बहानों को भी खोज निकाला गया है– मौसम में आ रहे परिवर्तनों को नियंत्रित करने के नाम पर जंगल पर आधिपत्य; रीयल स्टेट के विकास, सेज, साज तथा बीच उत्पादन हेतु समतल जमीन पर आधिपत्य; एक्सप्रेस–वे एवं हाई–वे के नाम पर सड़कों के किनारे की जमीनों पर कब्जा; समुद्र तटों पर होटल एवं पर्यटन के नाम पर कब्जा। और यह सब विकास के गाजे–बाजे के साथ

प्रस्तुत किया जा रहा है, इसे विश्व शक्ति बनने के लिए अनिवार्य बताया जा रहा है।

अगर थोड़ा हम पीछे मुड़कर देखें तो यह साफ दिखता है कि सामूहिक सम्पत्तियों को धीरे–धीरे निजी सम्पत्तियों में बदला गया, फिर बची–खुची सामूहिक सम्पत्तियों को राज्य की सम्पत्ति के रूप में रखा गया और अब राज्य इन सामूहिक तथा सार्वजनिक सम्पत्तियों (भूमि, खनिज, जंगल, नदी, तालाब) को कम्पनियों तथा कारपोरेट को सौंपता जा रहा है तथा तर्क दिया जा रहा है कि यह सम्पत्तियाँ किसी की निजी नहीं हैं बल्कि सरकार की हैं। अतएव किसी को विरोध करने का वैधानिक अधिकार नहीं है।

इन हालात की बारीकियों तथा षड्यन्त्रों के संदर्भ में स्पष्ट सोच रखते हुए ही हम प्रस्तावित भूमि–अधिग्रहण संशोधनों को देखें तो तस्वीर धुंधली नहीं बल्कि साफ–साफ दिखायी देगी।

आज वैश्विक स्तर पर चल रही वंचितीकरण की प्रक्रियाओं, असमानता तथा भेदभाव पर टिके ढांचों, निर्मम शासन व्यवस्था जो मुनाफे एवं वर्चस्व के अमानवीय मूल्यों पर टिकी है, के रहते यह उम्मीद करना कि विकेन्द्रीकरण, लोकतंत्र, समानता जैसे तत्व महत्व पायेंगे केवल सदिच्छा हो सकती है हकीकत नहीं। इसे सफल और असफल, विशिष्ट और सामान्य, मजदूर और मालिक, नियंता एवं नियंत्रित के बीच जारी द्वंदात्मक संघर्ष के रूप में समझने की ज़रूरत है। **विश्व व्यापार संगठन, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों तथा इसके 'मानीटर्स' ने इस द्वंद को जाने अनजाने में वैश्विक धरातल प्रदान कर दिया है। इसका इस्तेमाल करते हुए ढांचों, प्रक्रियाओं, मूल्यों को बदलने की दिशा में बढ़ना हमारी ज़िम्मेदारी हो गयी है।**

कहने का तात्पर्य यह है कि भूमि–अधिग्रहण अधिनियम का प्रस्तावित नया संस्करण अपने आप में कोई स्वतंत्र या अलग से अस्तित्ववान कोई कृत्य नहीं है वरन् यह जारी प्रक्रियाओं का एक सामान्य या महत्वपूर्ण पहलू मात्र है। यदि इस समझ को आधार बनाकर हम इस कानून का विश्लेषण करेंगे तो निश्चित तौर पर एक सही रणनीतिक पहल की दिशा तय होगी।

आज ज़रूरत इस बात की भी है कि भूमि अधिग्रहण की अधिकतम सीमा तय हो,

योजनाओं–परियोजनाओं, खनन, स्टील एवं सीमेंट आदि का उत्पादन देश की ज़रूरत के आधार पर हो न कि मुनाफाखोरी के लिए। आज जब दुनिया एक ध्रुवीय बनती जा रही है, दक्षिणपंथी रूझान बढ़ रहा है, विरोध–प्रतिरोध के स्वर कुचल दिये जा रहे हैं राष्ट्रीय–अंत. र्राष्ट्रीय स्तर पर मौजूद लोकतांत्रिक संस्थानों (संसद, न्यायपालिका, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं) का इस्तेमाल अलोकतांत्रिक कार्यों के लिए किया जा रहा है, वर्चस्ववादी एवं केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं तब भी दुनिया के लगभग सभी भागों में जन आंदोलन इन हालातों को चुनौती दे रहे हैं। यह संघर्ष भले ही आमूल–चूल बदलाव में कामयाब न हो पा रहे हों लेकिन पूंजीवादी वैश्वीकरण की गति को समय–समय पर कम करने में कामयाब रहे हैं। साम्राज्यवाद के नये संस्करण–उदारीकरण–निजीकरण के खगोलीकरण के इस दौर में मुनाफाखोर कंपनियों (देशी–विदेशी) की निगाहें जल–जंगल–ज़मीन समेत प्राकृतिक संसाधनों पर तेज़ी के साथ टिकी हैं वहीं पर इनकी रक्षा के लिए पूरी दुनिया में संघर्ष चल रहा है। आज पूरी मानवता की रक्षा के लिए चलने वाले संघर्ष तथा मुनाफाखोरी के बीच एक सीधा अंतर्विरोध है। इसका समाधान कुछ कानूनी खानापूर्ति या कुछ सुधार आयोग बना देने या कुछ नयी–नयी अंतर्राष्ट्रीय घोषणायें कर देने मात्र से हल होने वाला नहीं।

भूमि–अधिग्रहण : सोच–नज़रिया एवं सफर

प्रारंभिक दौर में भारतीय समजा में ''जमीन समाज की है'' की मान्यता तथा परम्परा थी। परंतु आगे चलकर इसमें परिस्थितिजन्य परिवर्तन आये/लाये गये। जमीन पर निजी मालिकाना का भी दौर आया। इस दौर में भी सामूहिक/सार्वजनिक जमीनों के साथ ही साथ जंगलों, पहाड़ों, नदियों, तालाबों, चरागाहों, खजिन पदार्थों का स्वीकार्य अस्तित्व था। समय का पहिया घूमता रहा और राज्य ने अपने आपको इन सामूहिक–सार्वजनिक सम्पत्तियों का भी मालिक अपने आपको घोषित कर दिया तथा श्रीमती इंदिरा गांधी के शासनकाल के दौरान भूमि के निजी मालिकाने को मौलिक अधिकारों की सूची से अलग करके इसे वैधानिक अधिकारों की सूची में डाल दिया गया। आज समकालीन दौर में राज्य ने सामूहिक–सार्वजनिक सम्पदा पर कब्जा करने के बाद इसे मुक्त बाजार के हवाले करना तेजी के साथ शुरू कर दिया है।

आज भूमि के मालिकाने तथा सामूहिक–सार्वजनिक सम्पदाओं के संदर्भ में भारतीय समाज की मान्यताओं और परम्पराओं को उलट दिया गया है। यह वही भारतीय समाज है जिसके आदिवासियों के अगुआ ताना भगत (खूँटी, झारखण्ड) ने अंग्रेजों को भूमि कर देने से मना करते हुए यह घोषणा की थी कि चूंकि यह भूमि हमारी है अतएव इस पर टैक्स देने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

भूमि अधिग्रहण की अवधारणा मूल रूप से इस मान्यता की उपज है कि सारी जमीन अंततः राज्य की संपत्ति है। अपने देश की सीमाओं के भीतर पड़ने वाली सारी जमीन राज्य की मिल्कियत है। इसलिये जमीन के वर्तमान और भावी प्रयोग के बारे में फैसला करने की अंतिम शक्ति राज्य के हाथों में ही निहित है। जहां एक तरफ जमीन के विकास और रखरखाव के लिये एक समान व्यवस्था के विकास के लिहाज से यह अवधारणा एक हद तक आवश्यक है वहीं इसमें भी कोई शक नहीं है कि राज्य के शासक समूह का एक हिस्सा इस प्रकार राज्य स्वामित्व के नाम पर अपने स्वार्थों की पूर्ति भी करता है। यह संभवतः एक लोकतांत्रिक व्यवस्था की देन है जिसमें सभी प्रकार की संपत्तियों को सभी लोगों की मिल्कियत मान लिया जाता है।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम की विषयवस्तु और औचित्य संबंधी वक्तव्य

के अनुसार **सार्वजनिक कल्याण और आर्थिक विकास के क्षेत्र में सरकार की चिंतायें सर्वोपरि हैं और इसलिये आवश्यकता पड़ने पर भूमि अधिग्रहण अपरिहार्य है। वक्तव्य और आगे जाकर स्पष्ट करता है कि सार्वजनिक कल्याण को बढ़ावा देने के साथ–साथ उस व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा भी की जानी चाहिये जिसकी जमीन उपरोक्त कल्याण कार्यों के लिये अधिग्रहित की जा रही है, क्योंकि उसकी भूमि के अधिग्रहण की स्थिति में वह अपने आजीविका के साधनों से वंचित हो जाता है।**

आगे कहा गया है कि **निजी उद्यम के लिये भूमि अधिग्रहण को प्राथमिकता के लिहाज से सार्वजनिक उद्देश्य के समकक्ष नहीं रखा जा सकता है।** दरअसल 1984 में इन्हीं कारणों को अधिनियम में संशोधन की वजह के रूप में रखा गया था। किन्तु जब हम भूमि अधिग्रहण से जुड़े अनगिनत विवादों के फैसलों पर नजर डालते हैं और यह देखते हैं कि राज्य ने भूमि अधिग्रहण के लिये कैसा रवैया अख्तियार किया है तो पता चलता **है कि इस वक्तव्य की पवित्रता महज एक कागजी जमा–खर्च से ज्यादा कुछ भी नहीं है और इसको अमली जामा पहनाने की कोई संजीदा कोशिशें की ही नहीं गयी हैं।**

भूमि–अधिग्रहण अधिनियम की पृष्ठभूमि वर्ष 1824 में ही बनने लगी थी जब ब्रितानी औपनिवेशिक शासकों ने यह महसूस किया था कि ज़मीनों को बलात कब्ज़ाने के कृत्य को कानूनी जामा पहनाया जाय (सभ्य लोग असभ्य तरीका कैसे अपनाते?)। इसमें पहला कदम बंगाल बंदोबस्त–1 (वर्ष 1824) था जो इसी सिद्धांत पर आधारित था कि राज्य को यह अधिकार है कि वह सार्वजनिक उपयोग के लिए निजी संपत्ति को अधिग्रहीत कर ले। इस बंगाल बंदोबस्त–1 ने राज्य को सड़कों, नहरों और अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए भू–अर्जन हेतु सक्षम बना दिया तथा आगे चलकर वर्ष 1850 में रेलवे हेतु भूमि अर्जित की जा सकी। **कलकत्ता, मद्रास एवं बंबई की सीमा में आने वाले भौगोलिक क्षेत्रों के लिए अलग–अलग बनाये गये कानून वर्ष 1857 तक पूरी ब्रिटिश इंडिया सीमा में लागू कर दिये गये।**

वर्ष 1870 में मुआवजे की राशि तय करने के नियम भी प्रतिपादित तथा परिभाषित किये गये तथा मुआवजे के संदर्भ में विवाद होने की स्थिति में वाद दायर करने का कानूनी हक भी दिया गया। 'ब्रिटिश राज' के दरम्यान भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया धीरे–धीरे विकसित होती रही। भूमि के साथ ही उनकी निगाह वनों पर भी नियंत्रण कायम करने की थी। अतएव उन्होंने भारतीय वन अधिनियम 1865, भारतीय वन अधिनियम 1878 (संशोधित), भारतीय वन

नीति 1894 तथा भारतीय वन अधिनियम, 1927 (संशोधित एवं परिवर्तित) समय–समय पर बनाये। इस बीच अंग्रेज हुक्मरानों को अपने राज कि हिफाजत की चिंता भी सता रही थी।

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 के दौरान अंग्रेजी सरकार ने बहुत सारे ऐसे कानून बनाये थे, जिनके उपयोग से आम जनता के विरोध के स्वर को कमज़ोर तथा नियंत्रित किया जा सके। उसी दौर के कानूनों में यह भूमि–अधिग्रहण कानून भी था जो 1894 से आज तक लगभग उसी रूप में लागू है। इस कानून के जरिये शासन समय–समय पर जनता की निजी तथा शामिलात मिल्कियत की ज़मीनें 'लोकहित' के नाम पर विभिन्न राष्ट्रीय, राज्य तथा निजी कंपनियों, योजनाओं, परियोजनाओं के लिए अधिग्रहीत करता रहा है।

इस औपनिवेशिक कानून का मुख्य सरोकार था– राज्य सार्वजनिक उद्‌देश्य के लिए भूमि का अधिग्रहण जल्दी तथा सहजता से कर सके तथा अधिक मुआवजे को सरकारी संसाधनों के दुरूपयोग के रूप में देखा जा सके और इससे बचा जा सके। इस मुख्य सरोकार का फल यह था कि 'सार्वजनिक उद्‌देश्य' की कोई कानूनी व्याख्या प्रस्तुत नहीं की गयी तथा यह माना जाने लगा कि **राज्य द्वारा यह घोषणा करना ही पर्याप्त होगा कि 'सार्वजनिक उद्‌देश्य' क्या है?** दूसरा फल यह था कि **मुआवजा तय करने के लिए ऐसे नियम बनाये गये जिससे 'अधिक मुआवजा' देने से बचा जा सके।**

वर्ष 1947 में औपनिवेशिक राज की समाप्ति के बाद भारत के गणतांत्रिक संविधान के अनुच्छेद–372 में यह व्यवस्था दी गयी कि जब तक विधिवत परिवर्तन न हो जाय ब्रिटिश राज में बनाये गये कानून जारी रहेंगे। परिणामस्वरूप भूमि–अधिग्रहण कानून 1894 भी यथावत जारी रखा गया। आज़ाद भारत में 'ब्रिटिश भारत' की तुलना में निर्माण कार्यों, बड़े बांधों, ऊर्जा संयंत्र, खदान, इस्पात एवं इंजीनियरिंग संयंत्र आदि में एकाएक तेज़ी आयी। इन निर्माण कार्यों, उद्योगों के लिए इसी कानून के तहत ज़मीनों का अधिग्रहण किया गया। फलतः छोटे किसानों, खेतिहर मज़दूरों, भूमिहीनों, दस्तकारों तथा वनों में रहने वालों का बड़ी संख्या में विस्थापन–पलायन हुआ। **इन परियोजनाओं के नाते आज़ाद भारत के शुरूआती 50 सालों में (यदि समाज वैज्ञानिकों के आकलन तथा अध्ययन को सही माना जाय) तो लगभग 5 करोड़ लोग विस्थापन–पलायन का शिकार हुए हैं।**

राज्य द्वारा बलात हथियायी गयी ज़मीनों का मकसद सार्वजनिक क्षेत्र और राजकीय परियोजनायें ही नहीं रही हैं। यहां तक कि नेहरूयुगीन

शासनकाल में भी राज्य सरकारों द्वारा निजी उद्योगों के लिए भी ज़मीनें अधिग्रहीत की गयीं। इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय का वर्ष 1962 का फैसला (आर. एल. आरोरा बनाम उ. प्र. राज्य) जिसमें **न्यायालय ने कहा कि टेक्सटाइल मशीन उत्पादक कंपनी के लिए भूमि अधिग्रहण को 'सार्वजनिक उद्देश्य' की कोटि में नहीं रखा जा सकता एक महत्वपूर्ण फैसला था।**

यह एक ऐसा मौका था जिसका इस्तेमाल नेहरू की सरकार इस कानून की बेइंसाफियों को खत्म करने में कर सकती थी। परंतु इसके ठीक उलट नेहरू की सरकार ने इस कानून में संशोधन भूमि–अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1962 के द्वारा ऐसी निजी कंपनियों के लिए भूमि–अधिग्रहण को भी सार्वजनिक उद्देश्य की कोटि में ला दिया जो कंपनियां सार्वजनिक उद्देश्य हेतु उत्पादन करने जा रही हैं। इस प्रकार **नेहरू के दौर का राज्य यह हक हासिल करने में कामयाब रहा कि वह निजी उद्योगों के लिए भी भूमि–अधिग्रहण कर सकता है।** परिणामतः न्यायालयों में निजी कंपनियों एवं संस्थानों की विभिन्न प्रकार की परियोजनायें– को–ऑपरेटिव सोसायटी के सदस्यों के लिए आवास, अल्मुनिया ब्रिक्स, छात्रावासों का निर्माण, एलेक्ट्रो–केमिकल फैक्ट्री, चीनी मिल आदि को सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति की कोटि में स्वीकृति मिलती रही और इन कार्यों के लिए राज्य द्वारा भूमि अधिग्रहण को वैधानिक ठहराया जाता रहा।

इस कानून में एक बार फिर से संशोधन श्रीमती इंदिरा गांधी के शासन काल में किया गया। भूमि–अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियिम, 1984। इसके द्वारा ज़मीन के मालिकों को मुआवजे के संदर्भ में थोड़ा सहूलियत मिली और भूमि–अधिग्रहण की समयावधि तय की गयी। 1984 में किया गया यह संशोधन भारत सरकार द्वारा बिना किसी लोकतांत्रिक सहभागिता पर आधारित बहस के भारतीय पूंजीपतियों तथा औद्योगिक घरानों के दबाव में किया गया।

निस्संदेह संशोधन अधिनियम, 1984 ने भूस्वामियों को कुछ राहत तो दी है लेकिन इससे **सरकार की शक्तियों में भी इजाफा हुआ है। अब जमीन का अधिग्रहण किसी सार्वजनिक निगम द्वारा भी किया जा सकता है, मानो वह सार्वजनिक उद्देश्य के लिये हो।** धारा 4 और 6 के बीच तीन वर्ष की अधिकतम समय सीमा निर्धारित कर दिये जाने से भूस्वामियों को राहत मिली है। सांत्वना राशि 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 प्रतिशत कर दी गयी है और आपात अधिग्रहण की स्थिति में, मुआवजे का 80 प्रतिशत अंश तत्काल अदा किया जाना आवश्यक है। संशोधन यह भी सुविधा देता है कि **यदि एक व्यक्ति अदालत के माध्यम से अपना मुआवजा बढ़वा लेता है तो उस आदेश का सहारा लेकर दूसरे व्यक्ति भी अपनी**

राशि बढ़वा सकते हैं, किन्तु अधिनियम में मुआवजे की राशि के दिए जाने के बारे में कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है।

इन भूमि–अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियमों ने कुल मिलाकर, भूमि अधिग्रहण के विषय में राज्य की शक्तियों को बढ़ाया ही है। **अधिनियम साफ तौर पर संपन्न वर्ग के पक्ष में है, जो सार्वजनिक उद्देश्य के नाम पर मिट्टी के मोल जमीनें खरीद कर मकान, दुकान, क्लब और होटल जैसे निर्माण करते हुए बेहिसाब कमाई कर सकता है।** अधिनियम साफ तौर पर जन विरोधी है, क्योंकि आम आदमी को अपने वैध हकों के लिये साल–दर–साल लड़ना पड़ता है और उसके बाद भी वह राहत और सम्मानजनक भरण–पोषण की आशा नहीं रख सकता है।

नेहरू एवं इंदिरा गांधी के समय में किये गये इन संशोधनों ने कंपनियों के प्रयोजन हेतु भूमि अधिग्रहण को भू–स्वामियों पर बाध्यकारी बना दिया। इसमें निजी तथा सामूहिक मिल्कियत दोनों तरह की ज़मीनें शामिल हो रही हैं।

आज आज़ादी के 63 साल बाद एक निर्वाचित तथा लोकतांत्रिक (?) यू.पी.ए. सरकार इस अधिनियम में संशोधन करके इसे और ज़्यादा जनविरोधी बनाने तथा पूंजी के हित में और कारगर बनाने हेतु आमादा है। इस कानून में 'कंपनी' के स्थान पर 'व्यक्ति' तथा 'प्राइवेट माइनिंग' को ढांचागत विकास का कार्य बताते हुए राज्य इस प्रयोजन हेतु भूमि अधिग्रहण करके इसे सक्षम व्यक्ति/यों (अर्थात् संसाधन संपन्न पूंजीपति/यों) को सौंपेगा, इसी प्रक्रिया को प्रस्तावित संशोधन में मज़बूती से समाहित कराने की तैयारी है। लेकिन बार–बार कहने के बावजूद भी 'सार्वजनिक उद्देश्य' की कानूनी व्याख्या/परिभाषा को अनसुना बनाये रखा गया है।

इस संदर्भ में कर्नाटक के भूमिहीन कृषकों की तरफ से दायर की गयी पी.आई.एल. पर सर्वोच्च न्यायालय ने मई 2007 में राज्य के मुख्य सचिवों तथा कृषि एवं वाणिज्य मंत्रालय को नोटिस जारी करके कहा था कि वे यह स्पष्ट करें कि 'सार्वजनिक उद्देश्य' का तात्पर्य क्या है? इस जनहित याचिका में भूमि–अधिग्रहण अधिनियम 1894 की धारा 3(f), 4 और 6 की संवैधानिकता को चुनौती देते हुए इन धाराओं को भारतीय संविधान की मूल भावना तथा संविधान के अनुच्छेद–14 (समानता का अधिकार), 19(1)(g), 21 (जीने का अधिकार तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता) के अलावा संविधान में प्रदत्त अन्य अधिकारों की अवहेलना बताया गया था। परंतु

आज भी यह प्रश्न अनुत्तरित है।

आज हालात यह है कि ज़मींदारी उन्मूलन अधिनियम, सीलिंग एक्ट, सी. एन. टी. एक्ट, संविधान के अनुच्छेद–5 में आदिवासियों को विशेष संरक्षण के प्रावधानों तथा अनुसूचित जातियों को भूमिहीनता से बचाने के लिए किये गये विशेष प्रावधानों, भूमि के मूल चरित्र में बदलावों पर लगाये गये अवरोधों–आदि जो एक सीमा तक खेतिहर समाज, आदिवासियों, भूमिहीनों, सीमांत किसानों तथा अनुसूचित एवं अनुसूचित जनजातियों के हितों का संरक्षण कर रहे थे, को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है।

इस बीच धीरे–धीरे अधिग्रहण के तरीकों में भी गुणात्मक परिवर्तन आ चुका है। पहले के दौर में उद्योगों की स्थापना के स्थानों का निर्धारण सरकार और उसकी इण्डस्ट्रियल डेवलपमेंट एजेंसीज़ के द्वारा किया जाता था। इन औद्योगिक क्षेत्रों में भूमि या शेड्स उद्योग लगाने हेतु सरकार द्वारा लीज पर या बेच कर उपलब्ध कराये जाते थे। इस तरह के क्षेत्रों में लगने वाले उद्योगों को कर्ज़ आदि देने में इण्डस्ट्रियल डेवलपमेंट कारपोरेशन्स तथा बैंक वरीयता भी देते थे और कई मामलों में 'जीरो इण्डस्ट्रियल एरिया' में उद्योग लगाने पर उद्योगों को कम ब्याज पर कर्ज़ के साथ ही साथ छूट (सब्सिडी) भी प्रदान की जाती थी। यह ऐसा दौर था जिसमें उद्योगपतियों को मनचाही जगह पर उद्योग लगाने हेतु कोई सरकारी मदद उपलब्ध नहीं करायी जाती थी और यह लगभग असंभव था क्योंकि सरकार अपने द्वारा तय किये गये औद्योगिक क्षेत्रों में ही बुनियादी ढांचा– बिजली, पानी, यातायात, बैंक तथा गोदाम आदि की व्यवस्था करती थी।

इस व्यवस्था से दो लाभ नज़र आ रहे थे– एक तो यह है कि औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय संतुलन कायम रहे और दूसरा यह कि कृषि भूमि की रक्षा की जा सके तथा भूमि का चरित्र (नवैय्यत) न बदलना पड़े। इसका कारण तत्कालीन सरकार पर औद्योगिक विकास एवं खाद्यान्न संप्रभुता दोनों को साथ लेकर चलने का कायम दबाव था। इन सरकारी नियंत्रणों का तीसरा प्रभाव यह भी था कि उद्योगों पर उत्पादन के साथ ही साथ यथासंभव श्रम समायोजन का भी दबाव बना रहता था। **फलतः औद्योगिक उत्पादन, अधिकतम श्रम समायोजन तथा खाद्यान्न संप्रभुता की तरफ काफी हद तक बढ़ा जा सका।**

लेकिन अभी हाल के 15–20 सालों में परिदृश्य एकदम उलटा हो गया है। अब उद्योगपति /कंपनियां यह तय कर रही हैं कि वे उद्योग कहां लगायेंगी तथा सरकार

की भूमिका यह हो गयी है कि वह कंपनी द्वारा चुने गये स्थान पर कंपनी की स्थापना में पूरी ताकत झोंक दे और वहां पर सार्वजनिक मद से बुनियादी ढांचे विकसित करे जिससे कंपनियां सहजता से अपना कार्य कर सकें। इस खातिर सरकार (रें) लगातार कानूनों, नीतियों में बदलाव करती रही हैं/कर रही हैं। इसे सेज अधिनियम 2006 के प्रावधानों के ज़रिये सहजता से समझा जा सकता है। इसके तहत 70 फीसदी ज़मीन कंपनी जहां भी चाहे ढूंढ ले बाकी 30 फीसदी ज़मीन सरकार अधिग्रहीत करके उपलब्ध करा देगी। कंपनियों (देशी/विदेशी) को दी गयी इस छूट का परिणाम यह हुआ है कि उड़ीसा के नियामगिरि की माइनिंग, पाराद्वीप बंदरगाह के बगल में नये निजी बंदरगाह बनाने, उड़ीसा–झारखंड–छत्तीसगढ़–हिमाचल प्रदेश के तमाम पहाड़ों–वनों–नदियों– ज़मीनों को कब्ज़ा कर कारोबार करने की छूट कंपनियों को सरकार(रों) द्वारा प्राप्त हो गयी है। इसके खातिर सरकार(रें) वनीकरण, पर्यावरण, प्रदूषण, नदियों की रक्षा तथा प्रकृति संरक्षण का भोंपू बजाते हुए कंपनियों को वन काटने, पहाड़ खोदने, अंधाधुंध माइनिंग करने, बड़े–बड़े बांध बनाने, नदियों को सुरंगों से गुजारने की खुली वैधानिक(?) अनुमति भी देती आ रही हैं। **अतएव इन तथाकथित विकास कार्यक्रमों(?), सभ्य बनाने(?) के नुस्खों में एक बार फिर से ज़मीन का ज़्यादा मालिकाना कंपनियों/कारपोरेट्स के लिए मलाईदार एजेण्डा बना हुआ है।**

इस बीच एक और तरह के भूमि सुधार और भूमि आबंटन शुरू हो गए हैं। इनकी दिशा बिल्कुल उलटी है। हमारी सरकारें जोतने वाले को ज़मीन देने के बजाय बड़ी–बड़ी कंपनियों और पूंजीपतियों को जमीन बांटने में लगी हैं। विशेष आर्थिक क्षेत्रों, बड़े उद्योगों, बड़े बांधों, राजमार्गों और शहरी कॉलोनियों के लिये बड़े पैमाने पर किसानों से जमीन छीनी जा रही है। कलिंगनगर, सिंगुर, नंदीग्राम आदि के बाद तो भूमि को लेकर सबसे अहम सवाल विस्थापन का ही बन गया है। **विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने की होड़ के पीछे एक कारण 'कर मुक्ति का स्वर्ग' है, तो दूसरा प्रमुख कारण सस्ती दरों पर महंगी जमीन हथियाने का मौका।**

विशेष आर्थिक क्षेत्रों के प्रस्तावों की संख्या अब पांच सौ के नज़दीक पहुंच रही है। अगर एक विशेष आर्थिक क्षेत्र का क्षेत्रफल औसतन दो हजार हेक्टेयर माना जाये, तो **देश की दस लाख हेक्टेयर कीमती भूमि तो इनकी बलि चढ़ने वाली है। सबसे बड़े विशेष आर्थिक क्षेत्र रिलायंस कंपनी के हैं जो गुडगांव, नवी मुंबई, भावनगर आदि में दस हज़ार हेक्टेयर से लेकर बीस हज़ार हेक्टेयर तक के क्षेत्र में बन रहे हैं। आज देश का**

सबसे बड़ा ज़मींदार अंबानी बन गया है। आज़ादी के साठ साल बाद अब देश में नई ज़मींदारियां कायम हो रही हैं। रेल मंत्री का बयान है कि रेलवे ने 1.33 लाख एकड़ का लैण्ड बैंक तैयार किया है।

शोषण को जारी रखते हुए जमीन हथियाने के लिए लोगों के बीच में अवधारणाओं (पैराडाइम) को लेकर भी भ्रम की स्थितियाँ पैदा करके उन्हें सुनहरे सपने दिखाये जा रहे हैं। **विकास की अवधारणा** किस प्रकार से सत्ता संतुलन को बदलती है इस पर लोगों में स्पष्टता नहीं है तथा भ्रमपूर्ण स्थिति है; **संरक्षण की अवधारणा** के अन्तर्गत वन संरक्षण, जल संरक्षण आदि की भ्रमपूर्ण अवधारणा बरकरार है; **जलवायु परिवर्तन के तरीके** को लेकर भी कार्बन ट्रेडिंग आदि के संदर्भ में भ्रमपूर्ण अवधारणा बरकरार है; आधुनिक प्रबंधन, स्वास्थ्य प्रबंधन, जल प्रबंधन, भोजन प्रबंधन आदि पर भी वही स्थिति है, **सामुदायिक सहभागिता** को लेकर भी भ्रमपूर्ण स्थिति है जहां मतदान तक ही सामुदायिक सहभागिता सीमित कर दी गयी है – वाटर यूजर एसोशियन, जल पंचायत, जे.एफ.एम. आदि।

पार्टियों तथा सिद्धांतों की सीमाओं को तोड़ते हुए इस संदर्भ में राज्य सरकारें भी बढ़ चढ़कर अपनी भूमिका निभा रही हैं। **संविधान के अनुच्छेद 246 के द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकारों ने भी भूमि कानूनों में समय–समय पर बदलाव करके यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया है कि कंपनियों को ज़मीनें आसानी से मिल सकें तथा ग्राम सभाओं, ग्रामवासियों को किसी न किसी तरह से ज़मीनों के मालिकाने से दूर किया जा सके।** हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा उत्तराखंड आदि राज्य किसी अन्य राज्य से कम सक्रिय नहीं हैं। इस संदर्भ में मध्य प्रदेश तथा उत्तराखंड राज्यों के बारे में संक्षेप में जान लेना अनुचित न होगा।

पिछले वर्ष मध्यप्रदेश सरकार ने गैर–वन परती भूमि को प्लांटेशन के लिये कंपनियों को मामूली शुल्क पर तीस वर्ष के लिए देने की नीति घोषित की है। प्रदेश सरकार का आकलन है कि वह पच्चीस लाख हेक्टेयर भूमि इस कार्य हेतु बांट सकती है। विशेषकर जैव–डीजल के मकसद से रतनजोत (जट्रोफा) लगाने के लिए हजारों–लाखों हेक्टेयर भूमि कंपनियों को देने के करार किए जा रहे हैं। एक करार **एक ही कंपनी को निमाड़–मालवा के पांच जिलों में तीन लाख हेक्टेयर भूमि रतनजोत (जट्रोफा) लगाने के लिये देने का हुआ है। यह वही इलाका है, जहां नर्मदा पर बड़े बांध बन रहे हैं और उनके लाखों विस्थापितों को देने के लिए सरकार के पास भूमि नहीं है।**

जिस ज़मीन को बंजर, परती या फालतू भूमि बता कर कंपनियों को बांटा जा रहा है, वह वास्तव में फालतू नहीं है। उस पर गरीब गांववासी मेहनत करके खेती कर रहे हैं। इसके अलावा वह सामुदायिक उपयोग की भूमि है। इसमें

गांववासी पशुओं को चराते हैं, जलावन, वनोपज, जड़ी–बूटी, मिट्टी, पत्थर, मुरम, रेच आदि अनेक चीज़ें प्राप्त करते हैं। यह ज़मीन कंपनियों को देने का मतलब ग्रामीण गरीबों को इन चीज़ों से वंचित करना होगा।

आमतौर पर यह माना जाता है कि वन संबंधी कड़े कानूनों के कारण वनभूमि को आसानी से कंपनियों को नहीं दिया जा सका है और वन बचे हुए हैं। लेकिन उदारीकरण की हवा वहां भी बह रही है। **केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय में वनभूमि को भी वृक्षारोपण के लिए कंपनियों को देने के प्रस्ताव पर गंभीरता से विचार चल रहा है।** लगभग सभी वन–बाहुल राज्यों में वन विभाग ने अतिक्रमण हटाने के नाम पर बड़े पैमाने पर आदिवासियों को बेदखल करना शुरू कर दिया है। मध्यप्रदेश में 28 हज़ार पट्टे वनवासियों को दिए गए हैं। साथ ही, मध्यप्रदेश सरकार ने तीस लाख हेक्टेयर के विशाल क्षेत्र को आरक्षित वन घोषित करने की प्रक्रिया तेज कर दी है। माना जा रहा है कि इसमें लगभग तिहाई निजी भूमि है। इससे लोगों का भूमि और जंगल पर से हक छिन जाएगा। भारतीय वन कानून 'आरक्षित वन' के नियम सबसे सख्त हैं। वहां खेती, चराई, वनोपज और जलाऊ लकड़ी, मिट्टी, मछली आदि किसी भी चीज़ को निकालने की अनुमति नहीं होगी।

उत्तराखंड की स्थिति भी लगभग इसी तरह की बनी हुई है। कांग्रेस सरकार द्वारा दो बार, पहला 12 सितंबर 2003 को और दूसरा 15 जनवरी 2004 को, भू–अध्यादेश लाये जाने के बाद भाजपा की सरकार भी 2 मई 2007 को एक नया भू–अध्यादेश ले आई। क्या इससे यह माना जाये कि राज्य की राजनीति में कृषि एवं कृषि भूमि का सवाल सचमुच प्राथमिकता में आ गया है?

कृषि, कृषि–भूमि और खेतिहर समाज का सवाल यदि प्राथमिकता में होता और लगातार घटती कृषि भूमि व ज़मीन का बाहरी लोगों के हाथों में हो रहा हस्तांतरण सरकारों की चिंता का विषय होता तो इन अध्यादेशों को लाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। क्योंकि ये तीनों अध्यादेश कहीं से भी इन सवालों का समाधान नहीं करते। यह सर्वविदित है कि राज्य की 75 प्रतिशत से ज़्यादा आबादी आज भी कृषि पर पूरी तरह निर्भर है मगर भूमि संकट के चलते इस आबादी के सामने अब अस्तित्व का संकट खड़ा हो रहा है। राज्य में कृषि भूमि अब मात्र 10 प्रतिशत के आसपास ही बची है और पहाड़ के ऊँचे हिस्सों में तो यह अभी मात्र 6 प्रतिशत के आसपास है। यही नीतियां चलती रहीं तो यह प्रतिशत और घटेगा। **इस संकट के लिए उत्तराखंड पर थोपे गये वे तमाम नियम, कानून और कार्यक्रम जिम्मेदार हैं, जो**

कृषि क्षेत्र के विस्तार को रोक रहे हैं। इनमें 1893 का भू अध्यादेश और 1960 का कूजा एक्ट प्रमुख है। 1893 में अंग्रेज शासकों द्वारा पहाड़ की बेनाप, बंजर परती चरागाह आदि श्रेणी की जमीनों वन भूमि के दायरे में लाने के लिये एक अध्यादेश लाया गया था। उसके बाद सन 1960 में इस क्षेत्र के लिये लाये गये 'कुमाऊँ उत्तराखंड जमींदारी विनाश एवं भूमि सुधार कानून' के जरिये इस भूमि को राज्य के खाते में डाल कर ग्राम पंचायतों से इसके प्रबंध एवं वितरण का अधिकार छीन लिया गया। सन् 1997 में तत्कालीन उ.प्र. सरकार ने एक आदेश के माध्यम से इस भूमि पर 1893 में अंग्रेजों द्वारा लाये गये शासनादेश को दोबारा लागू कर दिया। इसके चलते कृषि क्षेत्र का विस्तार पूर्ण रूप से प्रतिबंधित हुआ और सरकार द्वारा चलायी जाने वाली तमाम योजनाओं के लिये भूमि की आवश्यकताओं की पूर्ति भी कृषि भूमि से की जाने लगी। राज्य में मौजूद वर्तमान कृषि एवं कृषि–भूमि संकट का यही मुख्य कारण है।

मगर नया राज्य बनने के बाद भी सरकारें इन सवालों के सामने हाथ खड़े करते नजर आ रहीं हैं। आखिर क्या कारण है कि ये सरकारें एक के बाद एक तीन भू–अध्यादेश ले आयीं, मगर वे 1893 के भू अध्यादेश को निरस्त कर उसकी जगह नया कानून बना कर समस्त बेनाप, बंजर, परती, चारागाह आदि श्रेणी की जमीनों को ग्राम पंचायतों को लौटाने को तैयार नहीं हैं। वे राज्य में पंचायतों को भूमि के प्रबंध व वितरण का संवैधानिक अधिकार नहीं देना चाहतीं। तब इन भू–अध्यादेशों से किसका हित सधेगा?

उत्तराखंड के अंदर भू–माफिया और बड़े बिल्डर की एक शक्तिशाली लॉबी काम करती है, जिसकी पकड़ राज्य की सत्ता और सत्ताधारी पार्टियों पर मज़बूत है। इधर रियल स्टेट, कॉलोनाज़ेशन और ज़मीन पर पूंजी लगाने के लिये उत्तराखंड आकर्षण का केन्द्र बन कर उभरा है। **अंडरवर्ल्ड की जो ताकतें पहले मुंबई और दिल्ली में पूंजी लगा रही थीं, उनके लिये उत्तराखंड ने नयी संभावनाएं पैदा की हैं।** उन्होंने यहां के बिल्डरों व कॉलोनाइजरों के साथ अपने व्यापारिक रिश्ते जोड़कर उनके माध्यम से यहां पूंजी निवेश करना शुरू कर दिया है। अपनी मनमाफिक सरकार बनवाने और अपने हित में नियम कानून बदलवाने के लिये ये ताकतें बड़े पैमाने पर सत्ता में पहुंचने वाली पार्टियों पर धन खर्च कर रही हैं।

बहुत कम लोगों ने इस बात पर ध्यान दिया है कि भाजपा सरकार ने नया भू–अध्यादेश लाने से पहले कॉलोनाइजेशन और आवास निर्माण के

लिये कुछ ऐसे नये नियम व निर्देश जारी किये थे, जिनके अनुसार इस क्षेत्र में अब सिर्फ बड़ी पूंजी वालों को ही निर्माण की इजाज़त मिलेगी। उसके बाद लागू हुआ भू–अध्यादेश शहरों और उसके इर्द–गिर्द के गांवों में आर जोन (रिहायशी क्षेत्र) में तो जमीन की खरीद की कोई सीमा तय नहीं करता, ऊपर से कृषि क्षेत्र में भी 250 वर्ग मीटर जमीन खरीदने की इजाज़त दे देता है। यानी बिल्डर 103 लोगों के नाम से एक साथ पांच एकड़ भूमि लेकर उस पर बहुमंज़िला भवन बना कर कम से कम पांच सौ लोगों को बेच सकते हैं। इसी तरह से लोगों की संख्या बढ़ा कर वे गांव के गांव भी खरीद सकते हैं। तब यह भू–अध्यादेश भू–माफिया व बिल्डरों पर अंकुश कैसे लगा पायेगा?

भू–कारोबार में लगे एक हिस्से ने इस अध्यादेश का विरोध किया था। मगर उस विरोध के पीछे जमीन की बिक्री पर अंकुश का सवाल नहीं था, बल्कि यह चिंता ज़्यादा थी कि यह कारोबार बड़ी पूंजी वालों के हाथों में जा रहा है। बड़ी और अंडरवर्ल्ड की पूंजी के डर से छोटे और मझोले भू–कारोबारी विरोध में आवाज़ बुलंद कर रहे हैं। ज़ाहिर है कि **सरकार शक्तिशाली बड़ी पूंजी के पक्ष में मज़बूती से खड़ी है।**

अकेले छत्तीसगढ़ राज्य में पिछले 10 वर्षों में (राज्य बनने के बाद से आज तक) 69000 एकड़ कृषि भूमि का अधिग्रहण गैर–कृषि कार्यों के लिये किया जा चुका है। यह बात विधानसभा में वहां की सरकार ने स्वीकार की। शिवनाथ जैसी नदी की बिक्री जल आधारित स्थानीय अर्थ–व्यवस्था की मौत का एलान है। वहीं कृषि भूमि का व्यापक पैमाने पर अधिग्रहण खाद्यान्न संकट को खुला न्यौता देना है। उत्तर प्रदेश में भी अकेले गंगा एक्सप्रेस–वे परियोजना (नोयडा से बलिया) के प्रथम चरण में 40 हजार एकड़ उपजाऊ जमीन की जरूरत पड़ेगी। काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के सिविल इंजीनियरिंग विभाग में गंगा नदी पर शोध के लिए 1985 में गठित गंगा प्रयोगशाला के संस्थापक प्रो0 यू0 के0 चौधरी का कहना है कि इस परियोजना के अन्तर्गत 10 साल के अंदर लगभग एक लाख एकड़ कृषि भूमि का गैर–कृषि कार्यों में प्रयोग किया जायेगा जिससे अनुमानतः 50 लाख क्विंटल गेहूँ का उत्पादन प्रतिवर्ष घट जायेगा। प्रो0 चौधरी का कहना है कि इस परियोजना से न केवल गंगा और प्रदूषित होगी बल्कि गंगा बेसिन की जलवायु भी प्रभावित होगी।

यह सब जानते हुए भी भूमि–अधिग्रहण के लिए सक्रिय सरकारें किसके हित में कार्य कर रही हैं और क्यों संशोधन चाहती हैं, सहजता से समझा जा सकता है।

आज जब केन्द्र और सभी राज्य सरकारें बहुराष्ट्रीय निगमों और कॉरपोरेट घरानों को कृषि क्षेत्र में उत्पादन, फूड प्रोसेसिंग, थोक व खुदरा व्यापार तक का क्षेत्र उपलब्ध करा रही हैं, तब यहां की राज्य सरकार से पूँजीपति वर्ग के लोगों को जमीन की बिक्री पर प्रतिबंध लगवाने की उम्मीद करना निहायत बेवकूफी होगी।

विश्व बैंक, एशियन डेवलेपमेंट बैंक सरीखे अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान राष्ट्र राज्यों के ऊपर इस तरह की शर्तें थोपते आ रहे हैं तथा दिशा निर्देश जारी करते आ रहे हैं जिससे कि पूंजी अपने अतृप्त पेट को भरने के एक जुगाड़ के रूप में ज़मीन का उपभोग सरलता से कर सके। **इस उपभोग में खड़ी बाधाओं– वैधानिक, वित्तीय आदि को रास्ते से हटाने की ज़िम्मेदारी "राष्ट्र–राज्य" पर प्रत्यारोपित कर दी गयी हैं।**

इस संदर्भ में अगस्त 1996 में युनाइटेड नेशंस डेवलेपमेंट प्रोग्राम (यू. एन.डी.पी.), युनाइटेड नेशंस सेंटर फॉर ह्यूमन सेटेलमेंट (यू.एन.सी. एच.एस.) एवं विश्व बैंक द्वारा अरबन मैनेजमेंट प्रोग्राम हेतु जारी शहरी भूमि नीतियों में सुधार हेतु दिशा–निर्देश को जानते हुए हम यह समझ सकते हैं कि भूमि कानूनों तथा भूमि–अधिग्रहण कानूनों में प्रस्तावित संशोधन कहां से और क्या प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं:

नीतिगत बदलाव हेतु जारी यह दिशा–निर्देश सरकार के स्तर पर महत्वपूर्ण राजनैतिक फैसले तथा विनियमितीकरण एवं निजीकरण को स्पष्ट तौर पर बढ़ावा देने वाली प्रतिबद्धता की मांग करते हैं। इन सुधारों की गुंजाइश तथा गंभीरता अलग–अलग हो सकती है। उदाहरण के लिए भूमि उपयोग से संबंधित सुधार की शुरूआत शहरों के 'मास्टर प्लान' से की जा सकती है तथा मास्टर प्लान को लक्ष्य किया जा सकता है। **सार्वजनिक भूमि विकास एजेंसीज़ का पुर्नगठन, बड़ी अथॉरिटीज़ (प्राधिकरणों) को छोटे–छोटे ऑपरेशंस में बदलना और भूमि विकास कार्यक्रमों को निजीकृत करना– अधिक महत्वाकांक्षी सुधार कार्यक्रम होगा।**

सुधारों को और विस्तार देने के लिए चाहे वह छोटा संशोधन हो या व्यापक बदलाव– इसके लिए कानून बनाना होगा। इन सुधारों के लिए संपत्ति के अधिकार की व्यवस्था में भी मूलभूत बदलाव की ज़रूरत होगी। अतएव शहरी भूमि में नीतिगत बदलाव की रणनीति बनाने से पूर्व राजनैतिक एवं तकनीकी मसलों के आकलन की ज़रूरत होगी।

इन दिशा–निर्देशों के प्रमुख कदम/बिन्दु हैं:–

सुधार का पहला कदम : भूमि के बाज़ार का आकलन–

अधिकांश देशों में एक अनिवार्य समस्या यह है कि भूमि उपयोग नीतियां सरकारी नियंत्रण में हैं और निजी क्षेत्र के संस्थानों को इस संदर्भ में पर्याप्त सरकारी सहायता प्राप्त नहीं हो पायी है।

अतएव सरकारों के लिए पहला और आवश्यक कदम यह होना चाहिए कि वे शहरी भूमि के संबंध में अपनी नीतियों की जांच–पड़ताल तथा समीक्षा करें। इस संदर्भ में हमने एक तरीका विकसित किया है जो भूमि बाज़ार आकलन (लैण्ड मार्केट एसेसमेंट) के रूप में जाना जाता है।

दूसरा कदम : भूमि प्रबंध प्राधिकरणों का विकेंद्रीकरण–

शहरी भूमि नीति में परिवर्तन करना सरल हो जायेगा यदि इस संबंध में जिम्मेदारियां स्थानीय शासन को स्थानांतरित करके उन्हें इस कार्य हेतु अधिकृत कर दिया जाय। शहरी भूमि नीति के लिए राष्ट्रीय स्तर पर इसका आकलन करते हुए तथा कानूनी एवं संस्थागत प्रावधानों को समझते हुए इसे ठीक ढंग से बनाने एवं लागू किये जाने की ज़रूरत है। यदि स्थानीय शासन को शक्तियां प्रदान की जाती हैं तो सुधार कार्यक्रम तेज़ी के साथ आगे बढ़ सकेंगे और यह स्थानीय भूमि बाज़ार की स्थितियों के साथ बेहतर तालमेल वाला भी होगा।

तीसरा कदम : विनियमितीकरण–

शहरी भूमि नीतियों एवं नियम–कानूनों का सजग एवं संतुलित विनियमितीकरण भूमि की कीमत कम करेगा और भूमि बाज़ार की कार्य क्षमता को बढ़ायेगा। कीमत कम करने हेतु प्रथम और सबसे प्रभावशाली कदम यह है कि भूमि–उपयोग एवं विकास के मध्य भूमि की आपूर्ति (उपलब्धता) एवं भूमि की मांग के बीच संतुलन बनाया जाय। आवासीय भूमि के स्थानीय स्तर का आकलन किया जाय तथा निचली ज़मीनों के विकास एवं निर्माण की लागत को संशोधित किया जाय। **भूमि–उपयोग एवं विकास नियंत्रण सरलीकृत किया जाय तथा संस्तुति की प्रक्रिया छोटी की जाय।**

चौथा कदम : भूमि विकास की सार्वजनिक एजेंसियों की भूमिका कम की जाय–

बहुत से देशों में भूमि विकास की सार्वजनिक एजेंसियां भूमि बाज़ार के प्रयासों के लिए बहुत ही कम काम करती हैं न हि निर्धन तबके के लोगों के लिए भूमि या आवास उपलब्ध

कराती हैं और अकसर सरकार के ऊपर वित्तीय बोझ बढ़ाती रहती हैं। इसलिए सरकारों के लिए यह आवश्यक है कि वे ऐसी एजेंसियों की भूमिका का आकलन करें और सुधारात्मक कदम उठायें। इस तरह के उठाये जाने वाले कदमों में वृहत् आकार के बहुराज्यीय निगमों/प्राधिकरणों के आकार को छोटा करने हेतु उनका पुर्नगठन, सभी के सभी का निजीकरण या इन निगमों के किसी भाग का निजीकरण या इन्हें समाप्त करना शामिल है।

पांचवा कदम – भूमि बाज़ार के प्रयासों में क्षमता का संवर्द्धन–

बाज़ार–आधारित व्यवस्था वाले देशों में जहां पर परंपरागत तथा अनौपचारिक भूमि व्यवस्था होती है वहां सरकार को बड़ा मद निवेश करना होता है या निजी पहल को प्रश्रय–बढ़ावा देना होता है जिससे कि भूमि स्वामित्व के रिकार्ड एवं पंजीयन व्यवस्था को ठीक करके भूमि की खरीद–फरोख्त को बढ़ावा दिया जा सके। इसके लिए कम से कम पार्सल मैप बनाना होता है साथ ही साथ रिकार्ड रखने की व्यवस्था, जिसमें रीयल इस्टेट के लेन–देन का रिकार्ड दर्ज हो और भूमि के मालिकाना का रिकार्ड भी अपडेट किया जाना चाहिए। यह मैप क्षेत्रीय स्तर तथा सब–डिवीज़न के स्तर पर होने चाहिए।

यदि संपत्ति कर का प्रावधान है तो टैक्स एवं भूमि के लेन–देन का अतिरिक्त रिकार्ड भी होना चाहिए। साथ ही साथ संपत्ति की कीमत, टैक्स एसेसमेंट, भुगतान एवं प्राप्तियों का भी रिकार्ड होना चाहिए।

छठवां कदम : ढांचागत निर्माण हेतु नेटवर्क बनाना तथा उसे वित्तीय, संस्थानिक एवं समुचित स्वरूप प्रदान करना–

शहरी भूमि नीति के टिकाऊ ढांचागत निर्माण हेतु निवेश–कार्यक्रम के साथ समन्वय होना चाहिए। इस तरह के कार्यक्रमों के लिए इस बात की ज़रूरत है कि प्रत्येक शहर के लिए एक समुचित समग्र बुनियादी खाका तैयार किया जाय। इसमें आने वाली लागत का भी आकलन किया जाना चाहिए। इस आकलन में उन खर्चों को भी शामिल किया जाना चाहिए जो विकास कार्य को आगे बढ़ाने के लिए बुनियादी ढांचे के रूप में ज़रूरी होते हैं। **वित्तीय प्रबंधन भी टिकाऊ होना चाहिए अर्थात् इस बात की पूरी कोशिश होनी चाहिए कि बुनियादी ढांचों के लाभार्थी तथा उपभोगकर्ता उपयोग हेतु भुगतान करें।**

अब यह कहने की ज़रूरत नहीं कि 'जवाहरलाल नेहरू नेशनल अरबन रिन्यूवल मिशन' आदि योजनायें इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए ही लायी

गयीं। पूंजी की फौरी ज़रूरत 'शहरीकरण' को विस्तार देने में यह योजना महती भूमिका अदा करेगी वह भी जनता की निधि से। निश्चित तौर पर उपरोक्त निर्देशों का जल्दी से जल्दी तथा मुकम्मल पालन करने वाले शहरों को ही ढांचागत विकास आदि के लिए अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान कर्ज़ आदि की व्यवस्था करेगा।

शहरों के विस्तार, माइनिंग परियोजनाओं, इस्पात, सीमेंट कारखानों, ऊर्जा संयंत्रों, बांधों, गंगा एक्सप्रेस–वे सरीखी विशाल सड़क योजनाओं, हवाई अड्डों, होटलों, मॉल्स, नेशनल पार्कों, अभ्यारण्यों, आवासीय कालोनियों आदि तथाकथित विकास परियोजनाओं के लिए ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीनों की ज़रूरत पड़ेगी। अतएव यह आवश्यक है कि **भारत के खेतिहर समाज तथा वनवासियों को अपनी ज़मीन, जंगल तथा पानी से बरकरार रखी गयी आसक्ति को खतम कराया जाय।** अतएव ग्रामीण जीवन को गैर आकर्षक बनाया जाय, वे पशुपालन, कृषि तथा वनों पर आश्रित रहने की पिछड़ी (?) आदतें छोड़ें। इसके लिए भारतीय समाज की रीढ़ कृषि को तहस–नहस करना ज़रूरी माना गया होगा और इसके लिए खाद, बीज, कीटनाशक, एम.एस.पी., बिजली दरों, सिंचाई दरों आदि का बखूबी इस्तेमाल किया गया जिससे कि किसान खेती–बारी छोड़कर शहरों की तरफ भागें और खेती–किसानी का काम भी कारपोरेट के सक्षम (?) हाथों में पहुँच जाय।

हम जानते हैं कि हमारे देश में कृषि के जो तरीके हैं उनसे न केवल उस परिवार का भरण–पोषण होता है जिसकी ज़मीन है, बल्कि अन्य कम–से–कम नौ परिवारों की आजीविका भी चलती है। हमें यह भी ज्ञात है कि ग्रामीण परिवारों का अभी भी एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है जो अपनी फसल का एक बड़ा भाग अपने स्वयं के उपयोग के लिए पैदा करता है। एक ओर खेती के तरीके और जोत के स्वरूप ने बढ़ती हुई बेरोजगारी के विरूद्ध ढाल का काम किया है तो दूसरी ओर व्यवसायिक खेती के विपरीत जीवनयापन के लिए कृषि ने खाद्य के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की आवश्यकताओं को बल प्रदान किया है। **इन दोनों पक्षों ने लंबे समय से बेरोजगारी और खाद्य सुरक्षा के परिप्रेक्ष्य में ढाल की भूमिका निभाई है।**

परंतु कृषि व्यापार से जुड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के निहित स्वार्थों को पूरा करने व उन्हें खुश करने के उद्देश्य से जारी राष्ट्रीय कृषि नीति इन दोनों विशिष्टताओं की बलि चढ़ा रही है। परिणामस्वरूप– खेती और कृषि–व्यापार के लिए निजी कृषि भूमि पट्टे पर देने के उद्देश्य से लीज बाज़ार के विकास

की जो योजना बनी है उससे टेक्नोलोजी और पूंजी से लैस कंपनियों के पास बड़ी मात्रा में भूमि पहुंच रही है।

यह कोशिश है कि पिछड़ी तकनीक और पूंजी के अभाव के कारण भारतीय किसान अपनी ज़मीन को कंपनियों के हाथों किराये पर देने को मजबूर हो जायँ। इन कंपनियों पर किराये की जोत की मात्रा को सीमाबद्ध करने का कोई तरीका नहीं होगा, क्योंकि कृषि नीति का नीतिगत मसौदा इस मुद्दे पर चुप्पी साधे है।

उच्च प्रौद्योगिकी और भारी पूंजी निवेश वाले कृषि फार्मों में मज़दूर बहुत कम संख्या में रखे जाएंगे और सदियों से चली आ रही व्यवस्था एक भूमिधर परिवार 9 अन्य परिवारों को खिलाएगा वाली; सोच गायब हो रही है।

आज जो कृषि नीति जारी है वह निर्यात आधारित, व्यवसायिक फसलों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा नियंत्रित कृषि लागत की पक्षधर है जो खाद्यान्न संकट को बढ़ायेगी।

इस नीति का नतीजा यह होने जा रहा है कि **ग्रामीण भारत में मुट्ठीभर लोग कृषि–व्यापार में लगी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ मिल कर पैसा बटोरेंगे और एक राष्ट्र के रूप में भारत को बड़े पैमाने पर खाद्य सामग्री शीर्ष पांच निर्यातक देशों से मंगानी होगी।**

हमें यह ज्ञात है कि पिछले वर्षों में वित्त और वाणिज्य मंत्रालयों द्वारा घोषित नीतियों ने भारतीय कृषि के हितों को पहले ही बहुत नुकसान पहुंचाया है और मौजूदा कृषि–नीति भारतीय कृषि की पूरी तरह से कमर तोड़ देगी।

आज यह गंभीर मसला है कि जब राष्ट्र–राज्य अपने ही नागरिकों के हित के खिलाफ खड़ा है। तब ऐसे समय में **भारतीय किसानों को कृषि–व्यापार में लगी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का दलाल होने से कैसे बचाया जाय और कृषि फार्म मजदूर को अपने ही देश की सड़कों पर भीख मांगने को मजबूर होने से कैसे बचाया जाय?**

अतएव विश्व बैंक के दिशा–निर्देशों, पूँजी के बदलते चरित्र, राष्ट्र–राज्य की बदलती भूमिका, कृषि नीति में किये जा रहे आत्मघाती बदलावों तथा गाँवों को गैर–आकर्षक बनाते हुए शहरीकरण के विस्तार की कवायद आदि प्रक्रियाओं को ध्यान में रखकर हमें भूमि–अधिग्रहण के प्रस्तावित संशोधन अधिनियम का विश्लेषण करना होगा।

भूमि–अधिग्रहण : कुछ बुनियादी सवाल

भारतीय समाज में भूमि का मालिकाना (सामूहिक या निजी) एक महत्वपूर्ण मसला रहा है। समाज में मौजूद सत्ता संतुलन का भी यह एक आधार रहा है तथा मान–सम्मान का प्रतीक भी। भूमि व्यापक आबादी की जीविका का आधार रहा है। राज्य का चाहे जो भी दौर रहा हो जंगल–ज़मीन के सवाल पर उसके वर्चस्व तथा अधिनायकवादी हस्तक्षेप को सहजता से स्वीकार नहीं किया गया है। झारखंड के आदिवासियों का विद्रोह, 1861 में होशंगाबाद के बोरी क्षेत्र का विद्रोह जिसमें विद्रोही जागीरदार भभूत सिंह को जबलपुर जेल में फांसी पर अंग्रेज़ों ने लटका दिया, तेलंगाना आंदोलन, तेभागा आंदोलन, नील की खेती के खिलाफ गांधी का चम्पारन आंदोलन, महाराष्ट्र के आदिवासियों का विद्रोह आदि आंदोलन ब्रिटिश राज में खड़े हुए तथा आज़ाद भारत में कोयलकारों, नेतरहाट, हीराकुंड, चिल्का, बोध गया आंदोलन, नर्मदा, गंदमारदन जैसे संघर्ष खड़े हुए वहीं उदारीकरण–निजीकरण के दौर में काशीपुर, कलिंगनगर, सिंगुर, नंदीग्राम, पोस्को विरोधी, वेदांत विरोधी, मित्तल विरोधी, जिंदल–भूषण विरोधी, सेज विरोधी, गंगा एक्सप्रेस–वे विरोधी, यमुना एक्सप्रेस–वे विरोधी, नेशनल पार्क विरोधी, बड़े बाँध विरोधी, मोगरा बाँध विरोधी, विस्थापन विरोधी, शाल घाटी बचाओ आंदोलन, किन्नौर बचाओ आंदोलन, सोमपेटा का आंदोलन, प्लाचीमाडा का आंदोलन तथा परमाणु ऊर्जा संयंत्र विरोधी आंदोलन कहीं न कहीं ज़मीन, पानी तथा जंगल हथियाने के खिलाफ तथा मानवता एवं प्रकृति की रक्षा के लिए समर्पित रहे हैं।

इस पूरे दौर में **सत्ता को कई बार घुटने भी टेकने पड़े हैं परंतु सत्ता उसका चरित्र चाहे जैसा रहा हो, उसने हमेशा शक्ति के बल पर और जनता के हितों के विपरीत कानून–नीतियां बनाकर लोगों की आवाज़ दबाने का काम किया है।** इन कानूनों में भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 एक महत्वपूर्ण कानून रहा है। 1962 तथा 1984 में इस अधिनियम में संशोधन किये गये। 1999 से लगातार यह कोशिश की जा रही है कि इस अधिनियम में संशोधन किया जाय तथा इसकी धाराओं में परिवर्तन किया जाय। **अभी वर्ष 2007 में चर्चा में आया प्रस्तावित संशोधन भूमि के अधिग्रहण के संदर्भ में सरकार की भूमिका को खतम करने या नगण्य करने जैसा है। बाज़ार की ज़रूरतों तथा पूंजी के विकास के सभी सरोकारों को**

इस अधिनियम में समाहित करने में आ रही दिक्कतों को ध्यान में रखते हुए एक दबाव यह भी बनाया जा रहा है कि इस अधिनियम के स्थान पर कोई नया अधिनियम लाया जाय संशोधनों से काम चलने वाला नहीं। यह भी कहा जा रहा है कि प्रभावित भू–मालिकों को दिये जाने वाले मुआवजे के आकलन का आधार अगर 'बाज़ार की कीमत/दर' बनाया गया तो ज़मीन की कीमत 10 गुना बढ़ जायेगी।
प्रस्ताव यह है कि–

- ज़मीन के बदले ज़मीन दिये जाने को प्राथमिकता दी जायेगी यदि ऐसा न हो सका तो बाज़ार दर से बढ़ाकर लगभग 60 प्रतिशत (सांत्वना राशि के रूप में) मुआवजा दिया जायेगा।
- मुआवजे का कुछ अंश शेयर्स या डिवेंचर्स के रूप में दिया जायेगा (अगर संबंधित कंपनी इन्हें जारी करती है)।
- एल.ए.सी.डी.एस.ए. का गठन किया जायेगा।
- अधिग्रहीत की गयी भूमि (इस अधिनियम के तहत) सिवाय 'लोकहित' के किसी अन्य उद्देश्य हेतु स्थानांतरित नहीं की जायेगी।
- यदि यह ज़मीन 5 वर्ष तक बिना उपयोग के पड़ी रहती है तो सम्बद्ध सरकार को वापस कर दी जायेगी।
- 'सार्वजनिक उद्देश्य' (लोकहित) को सरकारी परियोजना के रूप में ही माना जायेगा।
- भूमि अधिग्रहण के कारण प्रभावित बटाईदारों, खेत मज़दूरों तथा ऐसे लोगों को भी मुआवजा दिया जायेगा जिनकी जीविका इस भू–अधिग्रहण से परोक्ष या अपरोक्ष रूप में प्रभावित होने जा रही है।
- भूमिहीनों को मुआवजा तभी मिलेगा जब वे यह सिद्ध कर सकें कि वे उस स्थान पर 5 वर्षों से रह रहे हैं जहां की ज़मीन अधिग्रहीत की गयी है।
- अधिग्रहण के समय विशेषज्ञों द्वारा सामाजिक प्रभाव आकलन कराया जायेगा।

आजादी के बाद जन–संघर्ष एवं जन–संगठन के प्रतिनिधियों द्वारा लगातार 'भूमि अधिग्रहण कानून' का विरोध करते हुए समय–समय पर इसे बदलने की मांग भी उठायी गयी। **1980 के दरम्यान 'भूमि अधिग्रहण अधिनियम' बनाने की प्रक्रिया भी केन्द्र सरकार द्वारा जोर–शोर से शुरू की गई थी, लेकिन समाज के विभिन्न प्रगतिशील ताकतों के विरोध एवं जन दबाव के चलते उस दौरान इस प्रक्रिया को शासन ने रोक लिया था।**

लेकिन आज फिर इस पर चर्चा होने लगी है, और संभावना यह है कि शीघ्रा. तिशीघ्र बाजार एवं कारपोरेट के दबाव में बदले भूमि अधिग्रहण अधिनियम को पारित करने की पुरजोर कोशिश की जायेगी।

उल्लेखनीय है कि पिछले 20–30 वर्षों से जनसंगठन भू–अर्जन अधिनियम की वर्तमान कानूनी पहल एवं सोच को बदलने हेतु लगातार दबाव बनाते रहे, लेकिन इन मांगों पर शासन के कानों में कभी जूं तक नहीं रेंगी। **पिछले दिनों औद्योगिक विकास तथा रियल स्टेट के व्यवसाय की वृहद संभावना को देखते हुए कॉरपोरेट घराने भमिू–अधिग्रहण अधिनियम बदलने के लिए शासन पर लगातार दबाव डालते रहे।** विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं पिछले 20 वर्षों से लगातार भारत सरकार को इस पर सुझाव देती रहीं तथा नियामक आयोग और ढांचागत परिवर्तन की बात भी करती रहीं। **विश्व बैंक और एशियाई विकास बैंक का मानना है कि तेज गति से विकास के लिए जमीन लेन–देन की प्रक्रिया भी द्रुत गति से चलनी चाहिए और जमीन बाजार को नियंत्रित करने के लिए एक संस्थागत ढांचे की आवश्यकता है, जिसमें शासन की दखलंदाजी कुछ विशेष न हो।** सेज कानूनों से यह बात स्पष्ट परिलक्षित होती है।

पिछले दिनों सेज कानून 2006 को संशोधित करते हुए यह स्पष्ट किया गया कि सेज के लिए इच्छुक कंपनी के लिए 70 प्रतिशत जमीन की स्वयं व्यवस्था करने के बाद शासन द्वारा 30 प्रतिशत जमीन उपलब्ध करायी जायेगी।

इससे स्पष्ट है कि कंपनी अपने हिस्से की जमीन खरीदने हेतु किसी भी तरह के हथकंडे (साम, दाम, दंड, भेद) अपना सकती है जिसका सीधा प्रभाव स्थानीय लोगों पर पड़ेगा।

यहां उल्लेखनीय है कि पिछले दिनों उद्योग हेतु जमीन अधिग्रहण की प्रक्रिया को देश के विभिन्न हिस्सों में जन आक्रोश का सामना करना पड़ा और इस जन आक्रोश को दबाने के लिए शासन ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी, चाहे किसी भी राजनैतिक दल की सरकार क्यों न हो। इन परिस्थितियों से निजात पाने के लिए पुनर्वास एवं पुनर्स्थापना नीतियों को अंतिम रूप देने के लिए केंद्र सरकार का प्रयास चल रहा है जिसमें उद्योग तथा विकास के लिए बलि चढ़ने वाले लोगों को आजीविका की सुरक्षा तथा क्षतिपूर्ति की बात अहम् रूप से कही गई है। वन क्षेत्रों में भी अभ्यारण्य, राष्ट्रीय उद्यान तथा बांध परियोजना को लेकर विस्थापन करने की प्रक्रिया तेजी से जारी है। उद्योग के विरोध में किसानों

का माहौल, सेज तथा 'रियल स्टेट बूम' के विरोध में भूमि खोने वालों का जन आक्रोश, बांध ,रास्ता आदि के नाम पर लोगों से जमीन छीनने की प्रक्रिया से उभरे जन आक्रोश व्यापक जनमत बनायेंगे। चाहे बंगाल का नंदीग्राम, सिंगूर हो, या हरियाणा, पंजाब, छत्तीसगढ़, काकीनाड़ा (आन्ध्र प्रदेश), कलिंगनगर, पॉस्को, नियामगिरि (उड़ीसा) हो, इन सभी जगहों की घटनाएं राष्ट्रीय जनमत को प्रभावित करेंगी। इसलिए राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण राजनैतिक दलों ने कुछ कानून और नीति बनाकर भ्रम की स्थिति पैदा करने के लिए प्रचारित कर रही हैं कि अधिग्रहीत की जाने वाली ज़मीनें सामूहिक मालिकाना वाली हैं इस पर किसी का निजी मालिकाना नहीं है। लेकिन सामूहिक मालिकाना की जमीन, अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है जैसे – कृषि अर्थव्यवस्था, जल अर्थव्यवस्था, पशुधन, जंगल आधारित अर्थव्यवस्था आदि। आज पूरे देश में बायोफ्यूल बनाने के नाम पर लाखों–करोड़ों एकड़ निस्तार जमीन में जट्रोफा लगाया जा रहा है। **अकेले राजस्थान में 60 लाख हेक्टेयर जमीन पर जट्रोफा लगाने की बात कही जा रही है। उसी तरह सामूहिक मलिकाना हक की जमीन को परती जमीन में बदलकर निजी कंपनियों को दिया जा रहा है।**

पर्यावरण संरक्षण के लिए सामूहिक मालिकाना हक की जमीन की एक अह्म भूमिका है। सामूहिक जल स्रोत के आस–पास की जमीन सामूहिक मालिकाना जमीन होती है यद्यपि जल स्रोत अपने में ही एक सामूहिक मालिकाना के स्रोत हैं। शासन की गलत नीतियों एवं कानूनों के चलते सामूहिक मालिकाना का अहसास लोगों के मन से धीरे–धीरे कम होता चला गया और सामूहिक मालिकाना की संपत्ति पर धीरे–धीरे निजी मालिकाना का कब्जा होता गया है।

सामूहिक मालिकाना पर केन्द्रीय स्तर की नीति का अभाव तो है ही, एक सोच यह है कि जब तक सामूहिक मालिकाना संपत्ति का वार्षिक वन ऑडिट की तरह नहीं होगा, तब तक सी पी आर को टिकाए रखना कठिन होगा।

भावी राष्ट्रीय आदिवासी नीति में भी आदिवासी अंचल की जमीन सुरक्षित रखने तथा आदिवासियों के निजी जमीन को संरक्षित करने हेतु कोई विशेष प्रावधान नहीं है।

इन स्थितियों में हमें कुछ सवालों पर गंभीरता से चर्चा करना जरूरी है, जैसे –

- क्या जमीन पर कानूनी मालिकाना शासन के पास रहेगा या उद्योगपति के पास?

- आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक, छोटे एवं सीमांत किसानों से खेतिहर जमीन लेकर उद्योगपतियों को देने के पीछे नीतिगत आधार क्या है?
- क्या सीलिंग एक्ट को समाप्त करके जमीन पर नियंत्रण चंद पूंजीपतियों के हाथ में रहेगा या सीलिंग एक्ट लागू करके अतिरिक्त जमीन भूमिहीन जरूरतमंदों को दी जायेगी?
- आज बढ़ती बेरोजगारी, घटते कुल कृषि उत्पादन, और बढ़ती पलायन की दर को देखते हुए 'अनुपस्थित जमींदार' के मुद्दे पर भी विस्तृत रूप से सोचा जाना चाहिए। आज महत्वपूर्ण है कि जमीन के मुद्दे पर हमारी राजनीति क्या हो?
- ज़मीन कोई बिक्री की वस्तु नहीं है, वह आजीविका के मूलभूत अधिकार का महत्वपूर्ण साधन है। जमीन का मालिकाना, उस पर टिके रहना और उसको Waiver बनाना एक राजनीतिक सवाल है, जिसका हल राजनैतिक ढंग से ही खोजा जा सकता है। एक तथाकथित एनजीओ ने जमीन के मुद्दे पर हस्तक्षेप कर जमीन मालिकाना के समीकरण तथा जमीन के राजनीतिकरण को बड़ा नुकसान पहुंचाया तथा जमीन के मुद्दे को जन आंदोलन में बदलने नहीं दिया। आजीविका के अधिकार के साथ अनाज के अधिकार के समीकरण को राजनीतिक ढंग से समझना एवं राजनीतिक हल खोजना बहुत जरूरी है। आज भारतीय संदर्भ में देखें तो 76 प्रतिशत जमीन 23 प्रतिशत लोगों के हाथ में है, इसलिए जमीन के मुद्दे के साथ अनाज के रिश्ते को अलग करके नहीं देखा जा सकता।

जमीन की लड़ाई को कानूनी संरचना के दायरे से बाहर रखना होगा। आज जो परिस्थिति हमारे सामने रखी जा रही है उसमें गांव के वृक्ष, घर, मवेशी, पानी, स्वास्थ्य, शिक्षा, अधोसंरचना, सभी का बहुत बुरा हाल है, केवल जो जमीन है उसी से कुछ विकास की संभावनाएं आगे दिखती हैं, बाकी सब बेकार है। इसलिए बाकी चीज को ठीक करने के बजाए जमीन का उपयोग बदलकर उस गांव में न ही सही पड़ोस के गांव में खुशहाली लायी जा सकती है इसी सोच के आधार पर आज किसान जमीन से बेदखल हो रहे हैं और बेचने पर मजबूर हो रहे हैं।

राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के तहत ही आज बीज कानून, जैव विविधता कानून सहित अन्य तमाम कानूनों को बदला जा रहा है।

इन परिस्थितियों का आकलन किये बिना तथा इन समझौतों पर पैनी नजर

रखे बिना जमीन की समस्या का हल नहीं खोजा जा सकता है।

वैश्विक जमीन बाजार में जमीन के उछलते भाव तथा स्थानीय जमीन बाजार में वैश्विक सन्दर्भ का राजनीतिक विश्लेषण किये बिना जमीन का राजनीतिक हल संभव नहीं है इसलिए जल, जंगल, जमीन, हवा के निजीकरण की प्रक्रिया को चुनौती देने के साथ–साथ व्यापार आधारित जीवन शैली को भी चुनौती देना पड़ेगा और उपभोग एवं पुनरुत्थान के बीच संतुलन लाना पड़ेगा। संसाधनों के निजीकरण पर आधारित विकास आज जनतंत्र की चुनौती है। लोगों के लिए राजनैतिक एवं जनतांत्रिक जगह धीरे–धीरे कम हो रही है।

भूमि अधिग्रहण कानून अगर रहेगा तो इनका स्वरूप क्या रहेगा, यह ज्यादा महत्वपूर्ण है। अगर बाजार का हित साधने के लिए किसी भी ढांचे का निर्माण किया जाता है तो वह कमजोर एवं सीमांत तबके की जनसंख्या को हाशिए में धकेल कर रख देगा। पिछले एक दशक के आंकड़े बताते हैं कि भूमिहीनों की संख्या में वृद्धि हुई है।

नव–आर्थिक उदारवाद के दौरान नये–नये तरीके के भूमि मालिक आज भूमि के बाजार में अपनी उपस्थिति दर्ज किये हुए हैं। उदारवाद के दौर में जहां राष्ट्र उद्योग के हित के संरक्षक हैं, तमाम नीतियां, कानून, वैश्विक पूँजी एवं बाजार को मजबूत करने में लगे हुए हैं। ऐसे संवेदनशील समय में राष्ट्र द्वारा भूमि अधिग्रहण कानून बनाने की प्रक्रिया को तेजी से चालू करना एक संशय को जन्म देता है, इसलिए अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध से जोड़कर इसे देखना होगा।

बहुत ही संगठित तरीके से आज विभिन्न घटकों द्वारा गैर राजनीतिकरण की प्रक्रिया तेजी से चलाई जा रही है। कोई समूह भूमि अधिग्रहण कानून को रद्द करने की बात कह रहे हैं, कोई समूह इसे बनाये रखने की बात कर रहे, कोई समूह आयोग बनाने की बात कर रहे, कोई समूह मिली–जुली बातें कर रहे हैं, इन सारी परिस्थितियों को गहराई से देखना होगा। लेकिन चाहे **निजी जमीन हो या सामूहिक जमीन हो, आम जनता अपनी जमीन पर टिके रहना चाहती है। पिछले वर्षों में देश के विभिन्न हिस्सों में प्रतिरोध एवं प्रतिवाद के माध्यम से**

जनता ने अपने विचार को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुंचाया है। इसी संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ गैर जनवादी ताकतें लगातार यह कहने में नहीं थक रही हैं कि जमीन आंदोलन कोई संघर्ष नहीं, विकल्प है।

भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में जनता का प्रतिरोध एवं प्रतिवाद के स्वर को दबाने के लिए विशेष रूप से सैन्यीकरण की प्रक्रिया को तेज किया जा रहा है तथा जन सुरक्षा कानून जैसे काले कानून बनाये जा रहे हैं, ताकि जनता की आवाज को दबाया जा सके। छत्तीसगढ़ झारखण्ड, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश तथा उत्तर–पूर्व भारत में विभिन्न आदिवासी समुदायों के बीच द्वंद पैदा किया जा रहा है, ताकि सैन्य हस्तक्षेप का माहौल मिल सके।

व्यापक जनमत के इन विद्रोही तेवरों को दबाने तथा लोकतांत्रिक तरीके से चल रहे प्रतिरोधों को दबाने के लिए तमाम दमनकारी कानून इजाद किये जा रहे हैं– छत्तीसगढ़ स्पेशल पब्लिक सेक्योरिटी एकट, मध्य प्रदेश स्पेशल एरिया सेक्योरिटी एक्ट, वेस्ट बंगाल प्रिवेंशन आफ क्रिमिनल एक्ट, यू0 पी0 एम0ओ0सी0ए0 आदि।

हकीकत यह है कि अव्यावहारिक तथा अवैज्ञानिक विकास का मौजूदा अवधारणा के द्वारा की गयी पर्यावरणीय क्षति ने सामाजिक अन्याय को बढ़ाया तथा अब एक बार फिर से पर्यावरण संरक्षण के नाम पर सामाजिक अन्याय को बढ़ाया जा रहा है। परंतु 'राज्य' और 'सत्ता' इस सत्य को स्वीकार करने से घबराती हैं और अपनी ही जनता के हितों की कतल को तत्पर हैं।

जब देश में 318 सांसद करोड़पति हों, केन्द्र राज्यों के अधिकारों पर लगातार कब्जा करता जा रहा हो तथा भारत के संघीय ढांचे को कमजोर करता जा रहा हो, देश की सम्प्रभुता को गिरवी रखता जा रहा हो, कल्याणकारी राज्य की अवधारणा से पल्ला झाड़ चुका हो तो भला ऐसी हालत में सहभागी संसदीय प्रजातन्त्र पर कौन और क्यों विश्वास करेगा।

लेकिन आज भारत समेत दुनिया के उन तमाम निर्धन देशों में लालची मुनाफाखोरों की प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जे की गतिविधियाँ जितनी तेज़ हो रही हैं, उनका विरोध और **प्रतिरोध भी उतनी ही तेज़ी के**

साथ बढ़ता जा रहा है। राष्ट्र–राज्यों की भूमिका की असलियत को जानने परखने के बाद लोगों का संसदों, न्यायपालिकाओं से मोहभंग होता जा रहा है। न्याय पाने की आशा से निराश आदिवासियों, किसानों, भूमिहीनों तथा मज़दूरों को लगने लगा है कि बिना हिंसा के उनकी बात नहीं सुनी जायेगी फलतः यह गुस्सा समय समय पर संगठित हिंसा के साथ ही साथ असंगठित हिंसा के रूप में जगह जगह फूट रहा है। यह उदारवादी एजेण्डे पर काम करने वाले शासकों तथा नियंताओं की तथाकथित लो. कतांत्रिक व्यवस्था जिसका आधार मुनाफाखोरी, विवेकहीन उपभोग, प्राकृतिक संसाधनों का तेज़ी के साथ विवेकहीन दोहन और मानव श्रम का न्यूनतम उपयोग है, के प्रति लोगों की पूर्ण असहमति का शंखनाद है।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894

अधिनियम का दायरा

इस अधिनियम के जरिये राज्य/केंद्र सरकार को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह निजी जमीन के मालिकों को मुआवजा देकर उनकी जमीन को अपने स्वामित्व में ले लें।

अधिनियम भूमि अधिग्रहण के उद्देश्य और तौर–तरीकों को भी स्पष्ट करता है। **इस कानून के अनुसार जमीन का अधिग्रहण अनिवार्यतः सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये ही होना चाहिये, हालांकि इसमें सार्वजनिक उद्देश्यों को परिभाषित नहीं किया गया है।**

अधिनियम का इतिहास बताता है कि इसका उदय निजी जमीनों के अधिग्रहण और क्रमशः सार्वजनिक सुविधायें मुहैया कराने के लिये हुआ था। ऐसी सार्वज. निक सुविधाओं के उदाहरण के रूप में मकान, स्कूल, हस्पताल, रेलवे लाईनों के निर्माण को लिया जा सकता है। समय बीतने के साथ इस अधिनियम में कई संशोधन किये गये और आखिरी संशोधन 1984 में केंद्र सरकार द्वारा किया गया था। वर्तमान में भूमि अधिग्रहण संशोधन विधेयक 2007 संसद के द्वारा पास किए जाने के लिए तैयार है।

- भूमि अधिग्रहण कानून केंद्र सरकार द्वारा बनाया गया था, लेकिन राज्य भी संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत उसमें संशोधन कर सकते हैं। इसके लिये अनुच्छेद 246 को संविधान के समवर्ती सूची की 7वीं अनुसूची के साथ पढ़ा जाये।

  विभिन्न राज्य सरकारों ने अलग–अलग समय पर अधिग्रहण के अधिकार, अधिसूचना प्रकाशित करने के तौर–तरीकों, जिन व्यक्तियों को अधिसूचना भेजी जानी चाहिये, उनके चयन आदि के विषय में कई संशोधन किये हैं।
- मुआवजे का आकलन धारा 4(1) के अंतर्गत जारी की जाने वाली अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के समय प्रचलित दामों पर किया जाना चाहिये।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम का कार्यान्वयन सदा ही विवादों का शिकार रहा है, क्योंकि यह व्यक्ति विशेष के संपत्ति के अधिकार पर चोट करता है और बदले में उसको समुचित पुनर्वास भी नहीं दे पाता है। पूरे देश में गांवों और

छोटे–मोटे कस्बों में अनगिनत लोगों को जमीन से हाथ धोना पड़ा है और उसके बदले में जहां एक ओर उन्हें केवल मामूली मुआवजे दिये गये वहीं दूसरी ओर पुनर्वास की व्यवस्था भी नहीं की गयी। 1984 के संशोधन का मुख्य जोर अधिग्रहण प्रक्रिया के साथ जुड़ी लेट–लतीफी और मुआवजों की अदायगी में अनावश्यक देरी पर लगाम लगाने पर ही रहा है।

यह संशोधन थे–

1. धारा 4(1) के अंतर्गत भूमि अधिग्रहण संबंधी उद्देश्य की घोषणा और धारा 6(1) के तहत अधिग्रहण की घोषणा के बीच तमाम कार्रवाईयों के लिये एक वर्ष की समयावधि निर्धारित कर दी गयी।
2. संशोधन के परिणामस्वरूप यह अनिवार्य है कि धारा 11(I) के तहत कलै. क्टर, धारा 6(I) के अंतर्गत अधिग्रहण की घोषणा के पश्चात दो वर्ष के भीतर निर्णय सुना दिया जाये।
3. धारा 4(I) के तहत नोटिस जारी होने की तारीख के बाद रकम के भुगतान में जितना भी समय लगेगा, उस अवधि के लिये धारा 23(IA) के तहत रकम पर 12 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज भी दिया जायेगा।
4. धारा 23(2) में संशोधन के अनुसार अब अधिग्रहित जमीन के बाजार मूल्य के 30 प्रतिशत के बराबर सांत्वना राशि दी जायेगी। संशोधन से पहले यह राशि 15 प्रतिशत थी। इस सांत्वना राशि का प्रावधान किसी भी प्रकार के नुकसान, पीड़ा या दुखद भावनाओं की भरपाई के लिये किया गया है।
5. धारा 28–ए के अंतर्गत संशोधन, उन लोगों को अपनी जमीन के पुनर्मूल्यांकन के लिये आवेदन का एक और अवसर उपलब्ध कराता है, जो कलैक्टर के द्वारा दिये गये निर्णय से संतुष्ट नहीं हैं। लेकिन संशोधन अधिनियम ने सरकार की विवेकाधीन शक्तियों में और इजाफा किया है और साथ ही कम्पनियों द्वारा भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को सरल भी बना दिया है।

भूमि अधिग्रहण कानून के अलावा भी सरकार विशेष कार्यों के लिये जमीन का अधिग्रहण कर सकती है। मिसाल के तौर पर, सरकार उद्योगों के नियोजित विकास, झोपड़ पट्टियों के पुनर्वास, शहरी विकास, आवासीय योजनाओं आदि के लिये जमीन का अधिग्रहण कर सकती है। इस प्रकार के अधिग्रहणों के लिये निम्न संबंधित कानूनों का सहारा लिया जाता है–

1. वन अधिनियम 1927
2. कोयला उत्पादक क्षेत्र (अधिग्रहण एवं विकास) अधिनियम 1957
3. झोपड़ पट्टी क्षेत्र (सुधार एवं पुनर्वास) अधिनियम 1956

4. दिल्ली विकास अधिनियम 1957

5. सोसायटी पंजीकरण अधिनियम 1860

6. महाराष्ट्र औद्योगिक विकास अधिनियम 1961

अधिनियम के अंतर्गत अधिग्रहण की प्रक्रिया को चार भागों में बांटा जा सकता है–

1. प्रारंभिक जाँच/सूचना, धारा–4, 5, 5ए

(i) धारा 4 (1) के अंतर्गत सरकार द्वारा अपने आधिकारिक गजट में एक प्रारंभिक अधिसूचना जारी की जायेगी कि संबंधित गांव या शहर में कोई विशेष जमीन सार्वजनिक उद्देश्य या किसी कम्पनी के लिये आवश्यक है, इस आशय की सूचना कम से कम दो समाचार पत्रों (जिसमें से एक स्थानीय भाषा में हों) में भी प्रकाशित किया जाना चाहिए। इसके साथ–साथ इसके बारे में सूचना सार्वजनिक स्थल पर चस्पा भी की जाएगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि जमीन निश्चित रूप से अधिग्रहित की जाने वाली है। इससे सरकार को जमीन के सर्वे का अवसर भर मिल जाता है। मुआवजे की गणना इस अधिसूचना के प्रकाशन के अंतिम दिन से शुरू की जायेगी। इसे 1984 के संशोधन में शामिल किया गया था। अधिसूचना उस सार्वजनिक उद्देश्य के विषय में जानकारी देने के लिये आवश्यक है, जिसके लिये जमीन की जरूरत है।

(ii) धारा 4(2) अधिकृत पदाधिकारियों को ऐसी जमीन के सर्वे उसे खोदने/मापने आदि के लिये प्रस्तावित जमीन में प्रवेश करने का अधिकार देती है। वह अधिकारी, इस दिशा में जांच के लिये भी उपयुक्त कदम उठा सकते हैं कि जिस कार्य के लिये भूमि अधिग्रहण प्रस्तावित है वह जमीन उस कार्य के लिये उपयुक्त है भी या नहीं।

(iii) धारा 5(ए) के तहत, नोटिस जारी होने की तारीख से 30 दिन के भीतर किसी भी प्रकार की आपत्तियों को लिखित रूप में कलैक्टर के सामने उठाया जा सकता है। अधिग्रहण से असंतुष्ट लोगों की सुनवाई और आगे जांच की जिम्मेदारी कलैक्टर की है। इसके बाद कलैक्टर सिफारिशों के साथ अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप देता है। इसके पश्चात सरकार का निर्णय अंतिम माना जायेगा और उसे अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती है, लेकिन कई बार ऐसे मामले भी प्रकाश में आये हैं, जहां कलैक्टर जमीन के प्रयोग के विषय में समुचित जानकारियां उपलब्ध कराने में विफल रहा है, ऐसे मामले में व्यक्ति उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर कर सकता है।

इस धारा के अंतर्गत भूस्वामियों, बटाईदारों, सूदखोरों के शिकार तथा अन्य लाभान्वितों को आपत्ति उठाने का अधिकार है। उच्चतम न्यायालय की भी यही प्रस्थापना है कि कलैक्टर की रिपोर्ट का जांच से संबंधित सभी व्यक्तियों व पक्षों को उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है।

2. अधिग्रहण की योजना की घोषणा, धारा 6–8

(i) कलैक्टर के द्वारा आपत्तियों को सुनने के बाद और तदुपरान्त अपनी संस्तुति देने के बाद सरकार धारा 6(1) के अंतर्गत घोषणा करती है कि संबंधित जमीन का अधिग्रहण किया जाने वाला है। इस धारा में घोषणा का प्रकाशन भी उसी प्रकार किया जाना निर्धारित किया गया है जिस प्रकार धारा 4(1) के अंतर्गत अधिसूचना का किया जाता है। घोषणा में, भूमि अधिग्रहण का विवरण, सार्वजनिक उद्देश्य, यदि अधिग्रहण कम्पनी के द्वारा या कम्पनी के लिये किया जा रहा है तो कम्पनी के विषय में सूचना, अधिग्रहित की गयी जमीन की योजना का विवरण और योजना कब तक उपलब्ध हो जायेगी, आदि का ब्यौरा देना आवश्यक होता है। सरकार चाहे तो एक अधिसूचना में उल्लिखित जमीन के बारे में कई घोषणायें भी कर सकती है लेकिन ऐसी सभी घोषणायें एक वर्ष की अवधि के भीतर ही होनी चाहिये।

रामचन्द्र बनाम भारत सरकार, 1994 एस सी सी 4 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया था कि 5ए और 6 के साथ जुड़ने पर धारा 4 का आशय है कि धारा 4, योजना के अंतर्गत जमीन को चिन्हित करती है, और उसके बाद उस जमीन का सर्वेक्षण व नक्शे तैयार करने की दिशा में बढ़ा जा सकता है। इसके साथ ही इस विषय में भी विचार किया जाता है कि विभिन्न संबंधित व्यक्तियों की आपत्तियों के बाद जिस उद्देश्य के लिये जमीन का अधिग्रहण किया जा रहा है वह उचित है या नहीं और इसके बाद ही सरकार अंतिम रूप से निर्णय लेती है जिसके उपरांत जमीन विशेष का उल्लेख करते हुए धारा 6 के तहत घोषणा प्रकाशित की जाती है। घोषणा हो जाने के बाद फौरन ही धारा 6 के तहत उसे व्यापक रूप से प्रकाशित कर दिया जाता है। धारा 6 के अंतर्गत घोषणा होते ही, अधिसूचना में उल्लिलिखत क्षेत्र के बाहर की जमीन स्वतः ही मुक्त हो जायगी।

3. संबंधित व्यक्तियों को नोटिस, जांच व कलैक्टर द्वारा निर्णय, धारा 9–16

धारा 9 के अंतर्गत, कलैक्टर को अधिग्रहित की जाने वाली जमीन से संबंधित व्यक्तियों को नोटिस भेजना अनिवार्य है। इस नोटिस के बाद संबंधित व्यक्तियों को अपने मुआवजे का दावा प्रस्तुत करने या जमीन की नाप वगैरह के सिल.

सिलेमें आपत्तियां उठाने के लिये, नोटिस जारी होने के 15 दिन के बाद कलै. क्टर से मिलकर बात करनी होती है। धारा 11 के तहत यह कलैक्टर का दायित्व है कि वह जमीन के विषय में सभी दावों और आपत्तियों की विस्तारप. ूर्वक जांच करें। धारा 11ए के अंतर्गत कलैक्टर को, सरकार द्वारा स्वीकृति के बाद, घोषणा के प्रकाशन की तारीख के बाद 2 साल के भीतर अपना निर्णय देना होता है। घोषणा के विषय मे संबंधित व्यक्तियों को सूचित करना आवश्यक होता है। 1984 के संशोधन अधिनियम के अनुसार धारा 4(1) के अंतर्गत अधिसूचना और धारा 11 के तहत कलैक्टर के निर्णय के बीच तीन साल से अधिक समय नहीं लगना चाहिये। संशोधन में धारा 13ए को भी शामिल किया गया है जिसके आधार पर आप निर्णय के छः माह के भीतर महत्वपूर्ण या गणना संबंधी त्रुटियों के बारे में अधिसूचना जारी करवाने के लिये आवेदन प्रस्तुत कर सकते हैं।

अधिनियम, कलैक्टर के निर्णय से असंतुष्ट व्यक्तियों के लिये कानूनी सहायता का भी प्रावधान करता है। असंतुष्ट पक्षों को निर्णय के विषय में जिस दिन पता चलता है, वह उसके छः सप्ताह के भीतर, धारा 18(2)(ए) के अंतर्गत जिला न्यायालय में वाद दाखिल कर सकते हैं। यह आवेदन केवल वही लोग कर सकते हैं, जो संबंधित हैं और जिन्होंने निर्णय को स्वीकार नहीं किया है या उसे असहमति के साथ स्वीकार किया है। प्रेमराज बनाम भारत सरकार (1992)3 एस सी सी 40 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने प्रस्थापना दी थी कि ऐसे आवेदन दाखिल किये जाने के तीन माह के भीतर कलैक्टर द्वारा न्यायालय को भेजे जायें।

4. कब्जा लेना, (धारा 16):

कलैक्टर द्वारा निर्णय दे दिये जाने के बाद वह जमीन को अपने कब्जे में ले सकता है, भले ही इस संदर्भ में कोई भुगतान किया गया हो या नहीं। अधिनियम में मुआवजे की रकम के भुगतान के बारे में कोई विशेष समय सीमा निर्धारित नहीं की गयी है।

धारा 17 के अंतर्गत सरकार के पास अधिकार है कि वह अत्यावश्यकता की स्थिति में कलैक्टर के निर्णय से भी पहले ही, जमीन का अधिग्रहण कर सकती है।

मुआवजा

धारा 23 में कुछ विशेष स्थितियों को लिया गया है जिन्हें मुआवजे के विषय में फैसला लेते हुए ध्यान में रखना आवश्यक है।

- जमीन का वास्तविक और संभावित प्रयोग
- खड़ी फसलें और पेड़
- शेष जमीन से अलगाव/विभाजन से क्षति
- अन्य संपत्तियों को क्षति
- अधिग्रहण के फलस्वरूप, आवास या व्यवसाय के स्थान में आने वाले बदलावों के खर्चें
- जमीन से लाभ में कमी के कारण होने वाली क्षति।

ठीक उसी तरह धारा 24 के तहत मुआवजे के आकलन के दौरान कुछ कतिपय परिस्थितियों को मुआवजे के आकलन से बाहर रखा गया है। अगर कोई व्यक्ति या जमीन का मालिक मुआवजे की राशि से संतुष्ट नहीं है तो वह व्यक्ति कलैक्टर को इस मामले को संबंधित न्यायालय को प्रेषित करने के लिए आवेदन कर सकता है। अगर कलैक्टर इस आवेदन को न्यायालय को प्रेषित नहीं करता है तो संबंधित व्यक्ति उच्च न्यायालय में रिट याचिका सीधे दायर कर सकता है। यहां यह जानना आवश्यक है कि मुआवजे की राशि को लेने के बाद भी याचिका पर पुनर्विचार की अर्जी लगाई जा सकती है।

लेकिन उसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि मुआवजा राशि व्यक्ति ने विरोध दर्शाते हुए लिया है। अधिनियम के क्षेत्राधिकार से स्पष्ट है कि यह अधिनियम सरकार को अधिकार देता है कि सार्वज. निक उद्देश्यों के लिये जमीन का अधिग्रहण कर सकती है लेकिन उसमें सार्वजनिक उद्देश्य को परिभाषित नहीं किया गया है। संबंधित गैरसरकारी पक्षों को कोई अधिकार नहीं दिये गये हैं, अधिग्रहण को रोकने के सिलसिले में, व्यक्ति आपत्तियां उठाने के जरिये महज उसे टाल सकता है। अधिनियम के अंतर्गत, कलैक्टर के परामर्श पर अदालत इस प्रकार के मामलों को ले सकती है लेकिन उसे भी पूरे मामले की विस्तृत सुनवाई का अधिकार नहीं है, वह केवल कलैक्टर को आदेश भर दे सकती है कि वह असंतुष्ट पक्षों की आपत्तियों पर पर्याप्त ध्यान दे। आपात स्थिति में सरकार मुआवजे का भुगतान किये बिना भी जमीन का अधिग्रहण कर सकती है और ऐसे में स्वयं न्यायालय भी आपात स्थिति या अत्यावश्यकता पर प्रश्न उठाने के अधिकारी नहीं हैं। निस्संदेह संशोधन अधिनियम, 1984 ने भूस्वामियों को कुछ राहत तो दी है लेकिन इससे सरकार की शक्तियों में भी इजाफा हुआ है। अब जमीन का अधिग्रहण किसी सार्वजनिक निगम द्वारा भी किया जा सकता है, मानो वह सार्वजनिक उद्देश्य के

लिये हो। धारा 4 और 6 के बीच तीन वर्ष की अधिकतम समय सीमा निर्धारित कर दिये जाने से भूस्वामियों को राहत मिली है। सांत्वना राशि 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 प्रतिशत कर दी गयी है और आपात अधिग्रहण की स्थिति में, मुआवजे का 80 प्रतिशत अंश तत्काल अदा किया जाना आवश्यक है। संशोधन यह भी सुविधा देता है कि यदि एक व्यक्ति अदालत के माध्यम से अपना मुआवजा बढ़वा लेता है तो उस आदेश का सहारा लेकर दूसरे व्यक्ति भी अपनी राशि बढ़वा सकते हैं, किन्तु अधिनियम में मुआवजे की राशि के दिए जाने के बारे में कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है।

संशोधन अधिनियम ने कुल मिलाकर, भूमि अधिग्रहण के विषय में राज्य की शक्तियों को बढ़ाया ही है। अधिनियम साफ तौर पर संपन्न वर्ग के पक्ष में है, जो सार्वजनिक उद्देश्य के नाम पर मिट्टी के मोल जमीनें खरीद कर मकान, दुकान, क्लब और होटल जैसे निर्माण करते हुए बेहिसाब कमाई कर सकता है। अधिनियम साफ तौर पर जन विरोधी है, क्योंकि आम आदमी को अपने वैध हकों के लिये साल–दर–साल लड़ना पड़ता है और उसके बाद भी वह राहत और सम्मानजनक भरण–पोषण की आशा नहीं रख सकता है।

5. सार्वजनिक उद्‌देश्य (भूमि–अधिग्रहण अधिनियम की दृष्टि में)

भूमि अधिग्रहण की दृष्टि में भूमि अधिग्रहण अधिनियम हमारे देश के सबसे पुराने और सबसे शुरूआती कानूनों में से एक है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम की विषयवस्तु और औचित्य संबंधी वक्तव्य के अनुसार सार्वजनिक कल्याण और आर्थिक विकास के क्षेत्र में सरकार की चिंतायें सर्वोपरि हैं और इसलिये आवश्यकता पड़ने पर भूमि अधिग्रहण अपरिहार्य है। वक्तव्य और आगे जाकर स्पष्ट करता है कि सार्वजनिक कल्याण को बढ़ावा देने के साथ–साथ उस व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा भी की जानी चाहिये जिसकी जमीन उपरोक्त कल्याण कार्यों के लिये अधिग्रहित की जा रही है, क्योंकि उसकी भूमि के अधिग्रहण की स्थिति में वह अपने आजीविका के साधनों से वंचित हो जाता है।

आगे कहा गया है कि निजी उद्यम के लिये भूमि अधिग्रहण को प्रा. थमिकता के लिहाज से सार्वजनिक उद्देश्य के समकक्ष नहीं रखा जा सकता है। दरअसल 1984 में इन्हीं कारणों को अधिनियम में संशोधन की वजह के रूप में रखा गया था। किन्तु जब हम भूमि अधिग्रहण से जुड़े अनगिनत विवादों के फैसलों पर नजर डालते हैं, और कि राज्य ने भूमि अधिग्रहण के लिये कैसा रवैया अख्तियार किया है तो पता चलता है कि इस वक्तव्य की पवित्रता महज एक

कागजी जमा–खर्च से ज्यादा कुछ भी नहीं है और इसको अमली जामा पहनाने की कोई संजीदा कोशिशें की ही नहीं गयी हैं।

भूमि अधिग्रहण की अवधारणा मूल रूप से इस मान्यता की उपज है कि सारी जमीन अंततः राज्य की संपत्ति है। अपने देश की सीमाओं के भीतर पड़ने वाली सारी जमीन राज्य की मिल्कियत है। इसलिये जमीन के वर्तमान और भावी प्रयोग के बारे में फैसला करने की अंतिम शक्ति राज्य के हाथों में ही निहित है। जहां एक तरफ जमीन के विकास और रखरखाव के लिये एक समान व्यवस्था के विकास के लिहाज से यह अवधारणा एक हद तक आवश्यक है वहीं इसमें भी कोई शक नहीं है कि राज्य के शासक समूह का एक हिस्सा इस प्रकार राज्य स्वामित्व के नाम पर अपने स्वार्थों की पूर्ति भी करता है। यह संभवतः एक लोकतांत्रिक व्यवस्था की देन है जिसमें सभी प्रकार की संपत्तियों को सभी लोगों की मिल्कियत मान लिया जाता है।

अधिनियम में परिभाषित सार्वजनिक उद्देश्य का आशयः

3(ढ)''सार्वजनिक उद्देश्य'' में शामिल है :

(i) गांवों के लिये जमीने मुहैया कराना या मौजूदा ग्रामीण जमीनों का विस्तार, योजनाबद्ध विकास या सुधार करना;

(ii) शहरी या ग्रामीण नियोजन के लिये जमीन मुहैया कराना;

(iii) सरकार की किसी नीति या योजना के कार्यान्वयन के तहत सार्वजनिक अनुदानों से जमीन के विकास के लिये जमीन मुहैया कराना, जिसके पश्चात आगे विकास या योजना को संपन्न करने के लिये उस जमीन को पट्टे पर दिया जा सकता है या बेचा भी जा सकता है;

(iv) राज्य स्वामित्व या नियंत्रण वाले निगमों के लिये जमीन मुहैया कराना;

(v) गरीबों या भूमिहीनों या प्राकृतिक आपदा ग्रस्त क्षेत्र में रहने वालों या ऐसे क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के लिये आवासीय जमीन मुहैया कराना जो सरकार, स्थानीय प्रशासन या राज्य नियंत्रित निगम आदि की ओर से चलाई गयी किसी योजना के कार्यान्वयन से प्रभावित हुए हैं,

(vi) शैक्षिक, आवासीय, स्वास्थ्य या झोपड़पट्टी विकास संबंधी किसी भी प्रकार की ऐसी योजना के लिये जमीन मुहैया कराना जो या तो सीधे सरकार की तरफ से या सरकार की अनुमति से स्थानीय प्रशासन द्वारा या फिर सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत किसी सोसायटी द्वारा, अथवा राज्य में तत्काल के लिये लागू किये जा रहे किसी कानून या सहकारी सोसायटी के द्वारा कार्यान्वित की जा रही हो;

(vii) सरकार या सरकार की अनुमति से स्थानीय प्रशासन द्वारा लागू की जा रही किसी भी विकास योजना के लिये जमीन मुहैया कराना;

(viii) किसी सार्वजनिक कार्यालय हेतु इमारत के निर्माण के लिये जमीन मुहैया कराना, लेकिन इसमें कम्पनियों के लिये भूमि अधिग्रहण शामिल नहीं है; अधिनियम के तहत दी गयी इस परिभाषा को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि सार्वजनिक उद्देश्य का आशय विकास कार्यों के लिये राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करना और गरीबों के कल्याण को सुगम बनाना है। मगर अधिनियम की धारा 6 में सार्वजनिक उद्देश्य की आवश्यकताओं में कम्पनी की आवश्यकताओं को भी शामिल किया गया है। यह धारा भूमि अधिग्रहण के विषय में अधिसूचना की घोषणा से संबंधित है। ये दो धारायें, जो कि सार्वजनिक उद्देश्य के साथ–साथ स्वयं अधिनियम की भी आधारशिला हैं, अपने आप में परस्पर विरोधी हैं। दरअसल, अधिसूचना के प्रकाशन से भी संबंधित धारा 4, अधिग्रहण के दायरे को निजी जरूरतों की पूर्ति तक भी फैला देती है।

अधिनियम की धारा 6 की भाषा

6. सार्वजनिक उद्देश्य के लिये जमीन की आवश्यकता संबंधी विज्ञप्ति–

1. इस अधिनियम के भाग VII के अधीन, जब संबंधित सरकार द्वारा यदि धारा 5–ए, उपधारा (2) के तहत कोई रिपोर्ट तैयार की गई है तो उस को पढ़ कर इस विषय में संतुष्ट हो जाती है कि कोई जमीन किसी सार्वजनिक उद्देश्य या किसी कम्पनी के लिये आवश्यक है तो इस विषय में एक विज्ञप्ति जारी की जाती है। इस विज्ञप्ति पर संबधित सरकार के सचिव या सरकार के आदेशों के अनुपालन के लिये नियुक्त किसी अधिकारी के हस्ताक्षर होंगे। इसके अतिरिक्त समय–समय पर जमीन के विभिन्न हिस्सों के लिये नयी विज्ञप्तियां जारी की जा सकती हैं जो धारा 4, उपधारा (1) के तहत दी गयी अधिसूचना पर ही आधारित हो सकती हैं और इस विषय में इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि धारा 5–ए, उपधारा (2) के तहत भिन्न रिपोर्टें तैयार की गयी हैं या नहीं।

यदि धारा 4, उपधारा (1) के तहत अधिसूचित किसी विशेष जमीन के लिये कोई विज्ञप्ति जारी नहीं की गयी है तो;

(i) भूमि अधिग्रहण (संशोधन एवं वैधीकरण) अध्यादेश, 1967 के शुरू होने के बाद लेकिन भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1984 के शुरू होने

के पहले विज्ञप्ति जारी न होने की स्थिति में अगली विज्ञप्ति अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के तीन साल समाप्त होने पर ही जारी की जा सकती है।

(ii) यदि भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम 1984 के प्रारंभ होने के बाद प्रकाशित की गयी है तो विज्ञप्ति, अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के एक वर्ष बाद ही जारी की जा सकती है।

इसके बाद ऐसी संपत्ति के विषय में तब तक कोई अन्य घोषणा नहीं की जा सकती है जब तक कम्पनी के सेश या सार्वजनिक राजस्व से उसका मुआवजा अदा नहीं कर दिया जाये।

स्पष्टीकरण–1

प्रथम उपबन्ध में उल्लिखित अवधि की गणना में वह समय शामिल नहीं होगा जिस दौरान धारा 4, उपधारा (1) के तहत जारी की गयी अधिसूचना के कार्यान्वयन से संबंधित कोई भी कार्य अदालती आदेश से स्थगित रहता है।

स्पष्टीकरण–2

1. जहां संपत्ति के एवज में मुआवजे का भुगतान किसी ऐसे निगम के सेश से किया जाता है जो या तो राज्य के स्वामित्व में है या नियंत्रण में है तो ऐसे मुआवजे को सार्वजनिक राजस्व से अदा किया गया भुगतान माना जायेगा।

2. प्रत्येक विज्ञप्ति आधिकारिक गज़ेट में प्रकाशित की जायेगी। इसके अलावा विज्ञप्ति को उस क्षेत्र के कम से कम दो समाचार पत्रों में भी प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें संबंधित जमीन स्थित है। इन अखबारों में से कम से कम एक का स्थानीय भाषा में होना आवश्यक है। इस विज्ञप्ति में दी गयी सूचना के विषय में सार्वज. निक सूचना को संबंधित क्षेत्र के उपयुक्त स्थानों तक पहुंचाने की जिम्मेदारी कलैक्टर के ऊपर रहेगी (आगे से इस प्रकार के प्रकाशन या सार्वजनिक सूचना पहुंचाने की अंतिम तारीख को विज्ञप्ति के प्रकाशन की तारीख माना जाये)। उस विज्ञप्ति में उस जिले और भौगोलिक पृष्ठभूमि की जानकारी दी जायेगी, जहां जमीन के विषय में योजनायें बनायी जानी हैं। विशेष मामलों में, उन स्थानों के बारे में जानकारी दी जायेगी जहां ऐसी योजनाओं

की जांच–पड़ताल की जा सकती है।

3. उपरोक्त विज्ञप्ति इस बात का परिपक्व साक्ष्य होगा कि जमीन वस्तुतः सार्वजनिक उद्देश्य के लिये आवश्यक है, और ऐसी विज्ञप्ति के प्रकाशन के बाद संबंधित सरकार उपयुक्त विधि से जमीन का अधिग्रहण कर सकती है।

इस धारा के विषय में लगभग सभी राज्यों ने संशोधन किये हैं। इस प्रकार के तमाम संशोधनों में केवल आन्ध्र प्रदेश सरकार द्वारा किया गया संशोधन ही उल्लेखनीय है, क्योंकि उसमें सार्वजनिक उद्देश्य के मूल आशय को समझा और राज्य अधिनियम में समाहित किया गया है।

आन्ध्र प्रदेश के संशोधन में, उपरोक्त धारा में केवल वही मामले शामिल किये गये हैं जहां जमीन की आवश्यकता गरीबों के लिये आवासीय सुविधाओं के निर्माण, विस्तार या सुधार के लिये है।

अलग–अलग विज्ञप्तियों का जारी होना भी अनेक विवादों का स्रोत रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने 1966 में व्यवस्था दी थी कि जमीन के अधिग्रहण के विषय में जो मूल उद्देश्य निर्धारित किया गया था, उस उद्देश्य को बदलना गैरकानूनी है। इस फैसले के बाद बड़ी संख्या में अधिग्रहणों को रोक देना पड़ा, क्योंकि सरकार बार–बार अपने उद्देश्य में बदलाव करती रहती थी। इस स्थिति से निपटने के लिये 1967 में राज्य की तरफ से एक संशोधन किया गया, और नतीजतन अधिनियम की मौजूदा रूपरेखा में विज्ञप्ति को उसके प्रकाशन के तीन वर्ष की अवधि में ही बदला जा सकता है।

इस सिलसिले में सुप्रीम कोर्ट का रवैया काफी व्यापक और विभिन्नतापूर्ण रहा है। दरअसल 1985 के बाद कई ऐसे निर्णय आये हैं जिन्होंने सार्वजनिक उद्देश्य की परिभाषा मे इतने प्रकार के नये क्षेत्रों को शामिल कर दिया है कि अब राज्य द्वारा लगभग किसी भी प्रकार की जमीन का किसी भी उद्देश्य के लिये अधिग्रहण वैध दिखायी देने लगा है। ऐसे भी कई मामले रहे हैं जहां सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को अपना उद्देश्य बदलने की छूट दे दी।

सार्वजनिक उद्देश्य के विषय में सुप्रीम कोर्ट : 1985–2000

आर्थिक रूप से कमजोर तबकों के लिये आवास उपलब्ध कराने के उद्देश्य से किया जाने वाला अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य की श्रेणी में आता है। तद्नुसार राज्य गजेट में धारा 4(1) के तहत विज्ञप्ति का प्रकाशन कानूनी और वैध है। इस संदर्भ में धारा 6 के तहत भी एक विज्ञप्ति जारी की गयी है, जिससे

सार्वजनिक उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है कि जमीन की आवश्यकता सार्वजनिक उद्देश्य के लिए कॉलोनी के निर्माण और विकास के लिये है।

चंद्रावती देवी बनाम हरियाणा राज्य (1995, पूरक (2) एस सी सी 54)

लोगों के लिये बेहतर जीवन परिस्थितियां सुलभ कराने के उद्देश्य से आवासीय सुविधायें मुहैया कराना एक अत्यंत महत्वपूर्ण सार्वजनिक उद्देश्य है और इस मामले में अधिग्रहण प्रशासन के सामने अधिनियम के तहत अपना दृष्टिकोण निर्मित करने के लिये पर्याप्त साधन उपलब्ध थे।

दानकुनी आवासीय परियोजना पर एक नजर डालना भी प्रासंगिक रहेगा। कहा गया है कि दानकुनी नामक स्थान कलकत्ता शहर के साथ सड़क व रेलमार्ग के जरिये भली–भांति जुड़ा हुआ है। यह स्थान शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के दायरे में आता है। पश्चिम बंगाल हाउसिंग बोर्ड ने तय किया कि पश्चिम बंगाल के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय परियोजना पर काम किया जाये। दानकुनी के सिलसिले में हाउसिंग बोर्ड की योजना थी कि वहां मूजा मनोहरपुर में समाज के कमजोर तबकों के लिये 1100 आवासीय इकाईयां निर्मित की जायें, जिसमें एक बाजार, डॉक्टर के क्लिनिक, सड़कों और नालियों आदि की भी व्यवस्था हो। इससे परियोजना के दायरे में आने वाले 6000 निवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जानी थी। राज्य सरकार ने इस संदर्भ में 21.41 एकड़ जमीन के अधिग्रहण को मंजूरी दे दी। इसी ज़मीन में विवादित जमीन भी शामिल है। आगे जानकारी दी गयी है कि 1983 से 1994 के बीच उच्चन्यायालय में रिट याचिकाओं की सुनवाई के दौरान निर्माण कार्य रूक–रूक कर चलता रहा।

पश्चिम बंगाल हाउसिंग बोर्ड बनाम भंवर लाल मूंधड़ा (1997(6)एस सी सी 151)

सुप्रीम कोर्ट में उठाया गया एक और प्रश्न संविधान के अनुच्छेद 300ए में सरकार की भूमि अधिग्रहण संबंधी शक्तियों के विरूद्ध अधिकारों के विषय में था। इस संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट का विचार था कि–

''अनुच्छेद 300–ए में प्रयुक्त शब्द ''संपत्ति'' को राज्य की संप्रभु शक्तियों के कार्यान्वयन व अधिग्रहित संपत्ति के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। 'एक व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित करने' इस वाक्यांश को भी उस केस की स्थिति के संदर्भ में ही देखा जाना चाहिये। वंचना शब्द कई अवधारणाओं को स्पष्ट करता है। अधिग्रहण या मांगने पर दे देने या किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिये संपत्ति पर कब्जा कर लेना– यह सभी विचार वंचना से जुड़े हैं। अनुच्छेद

300–ए निजी संपत्ति के ऐसे अधिग्रहण या हस्तगतकरण से संबंधित है जो कानून के अनुसार अनिवार्यतः सार्वजनिक उद्देश्य के लिये किया जा रहा हो। अनुच्छेद 300ए में प्रयुक्त ''कानून'' संसद या विधान सभा द्वारा पारित अधिनियम अथवा कानून की शक्तियो से लैस कोई नियम या वैधानिक आदेश ही होना चाहिये। संपत्ति से वंचित करने का कार्य कानून के द्वारा ही किया जा सकता है फिर भले ही वह संसद द्वारा पारित अधिनियम का अंग हो या विधानसभा द्वारा पारित अधिनियम का, तथा कोई भी अन्य प्रशासनिक आदेश इस विषय में अपर्याप्त होगा। प्रत्येक संप्रभु राज्य के विशिष्ट अधिकार क्षेत्र में स्वामी की सहमति के बिना भी संपत्ति के अधिग्रहण का अधिकार निहित है। प्रथम दृष्टया, कोई उद्देश्य सार्वजनिक उद्देश्य है या नहीं, इस विषय में राज्य निर्णय ले सकता है। लेकिन वह एकमात्र निर्णायक अधिकारी नहीं है। उसका निर्णय भी न्यायिक समीक्षा के अधीन होगा और कोई उद्देश्य वास्तव में सार्वजनिक उद्देश्य है या नहीं इस विषय में समीक्षा करना न्यायालय का दायित्व है। सार्वज. निक हित का विचार सार्वजनिक उद्देश्य के विषय में हमेशा ही एक महत्वपूर्ण तत्व रहा है। लेकिन प्रत्येक सार्वजनिक उद्देश्य अनुच्छेद 300ए के तहत नहीं आता है। सामान्य शब्दों में, सार्वजनिक स्वास्थ्य की देखरेख या जीवन एवं संपत्ति की क्षति को रोकने को सार्वजनिक उद्देश्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसके बावजूद ऐसे सभी उद्देश्यों के लिए संपत्ति का हस्तगतकरण या अधिग्रहण अनुच्छेद 300ए के दायरे में नहीं आता है। ऐसा राज्य की पुलिस शक्ति के प्रयोग की स्थिति में ही हो सकता है। दूसरे शब्दों में अनुच्छेद 300ए राज्य की शक्तियों पर अंकुश ही लगाता है कि किसी भी व्यक्ति को कानून के अलावा और किसी भी माध्यम से उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है। कानून की सहमति के बिना कोई हस्तगतकरण वैध नहीं है। किसी भी अन्य प्रकार से किया गया हस्तगतकरण या कब्जा अनुच्छेद 300ए के तहत नहीं आता है। यदि किसी कानून का प्रयोग नहीं किया गया है तो कोई हस्तगत करण नहीं हो सकता है। खान, खनिजों व खदान का अधिग्रहण अनुच्छेद 300ए के दायरे में आता है।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में जैसे कल्याणकारी राज्य की कल्पना की गयी है, उसमें प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम भौतिक सु. विधाओं, मसलन भोजन, वस्त्र व उपयुक्त आवास की व्यवस्था एक पूर्व शर्त है। जीवन स्तर में इजाफा मौजूदा या फैलते भौतिक संसाधनों व वैज्ञानिक ज्ञान आदि के माध्यम से ही हो सकता है और राज्य का यह अधिकार व कर्तव्य है कि यदि निजी प्रयास

विफल हो जाते हैं तो स्थिति को संभालने के लिये वह उचित कदम उठाये। एक लोकतांत्रिक समाज में, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सुविधाओं और संग्रह की सुरक्षा के लिये कानूनी संरक्षण की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार व्यापक कल्याण के लिये आवश्यक है कि व्यक्तिगत हितों को सामाजिक इंजीनियरिंग के तौर पर, कानून की सहायता से सामाजिक हितों के साथ तालमेल में रखा जाये जिसका अभिप्राय है कि उस संपत्ति पर सार्वजनिक अंकुश लगाया जाये, जो संपत्ति द्वारा मिलने वाले लाभों को विकृत करती है। संपत्ति के प्रयोग पर अंकुश, राष्ट्र की प्रमुख परिसंपत्तियों पर अर्द्धसहकारी निजी नियंत्रण का माध्यम है। इस प्रकार संपत्ति नियमन के अधीन आती है। नीति निर्देशक सिद्धांत राज्य द्वारा कानून व प्रशासनिक व्यवस्था के जरिये आर्थिक व्यवस्था के पुर्नसंयोजन को सुगम बनाते है तथा मूलभूत अधिकार जीवन को सार्थक बनाने, अवसरों की समानता सुनिश्चित करने व व्यक्ति की हैसियत सम्मान को स्थापित करने के उद्देश्य के संदर्भ में एक उपयुक्त साधन हैं। नीति निर्देशक सिद्धांत और मूलभूत अधिकार सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र को वास्तविक रूप देने वाले रथ के दो पहियों की तरह हैं।

जब राज्य अपनी प्रशासनिक शक्तियों के सहारे निजी संपत्ति का अधिग्रहण करता है तो वह अधिग्रहण भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 या ऐसे ही राज्य कानूनों के आधार पर होता है। हालांकि इस प्रकार किया जाने वाला अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये होता है लेकिन संबंधित अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के अनुसार तात्कालिक बाजार कीमतों के आधार पर मुआवजे की अदायगी अनिवार्य है। लेकिन, जब राज्य अपने विशिष्ट अधिकार क्षेत्र की शक्तियों का प्रयोग करते हुए अनुच्छेद 300ए के तहत, यदि संविधान में दिये गये नीति निर्देशक सिद्धांतों को आगे बढ़ाने के लिये किसी नागरिक की संपत्ति को अधिग्रहित करता है या मांगता है या हस्तगत कर लेता है तो उस स्थिति में संपत्ति के मालिक को संपत्ति के मूल्य के बराबर मुआवजा देने का पैमाना लागू नहीं होता है। विधायिका के पास कानून के तहत सार्वजनिक उद्देश्य के लिये निहित कार्यक्षेत्र है। इस प्रकार के भुगतान के लिये या तो कानून एक राशि निर्धारित कर सकता है या उसके निर्धारण के

लिये दिये गये सिद्धांतों का प्रयोग किया जा सकता है और इस प्रकार निर्धारित होने वाली राशि उपरोक्त मानक के अनुसार निर्धारित होने वाली राशि के अनुरूप हो ऐसा आवश्यक नहीं है। लेकिन जबकि अनुच्छेद 31(2) को पूरी तरह निरस्त किया जा चुका हो तब न्यायिक व्याख्या को अनुच्छेद 300ए के तहत संपत्ति के हस्तगतकरण के मामले में, मुआवजे की अवधारणा को पुनर्जीवित करने का उपकरण नही बनाया जा सकता है। इसके फलस्वरूप अनिवार्य निष्कर्ष यह निकलता है कि अनुच्छेद 300ए के तहत संपत्ति के अधिग्रहण या हस्तगतकरण की स्थिति में मुआवजे के भुगतान का प्रश्न अनावश्यक हो जाता है।

जिलू भाई नंदभाई खचर व अन्य बनाम गुजरात राज्य व अन्य (1995, पूरक (1) एस सी सी 596)

धारा 6 को धारा 4 के साथ पढ़े जाने पर। धारा 4 व 6 के तहत जारी की गयी अधिसूचनाओं में उल्लिखित विभिन्न सार्वजनिक उद्देश्यों का आशय अलग–अलग है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रशासनिक अधिकारियों ने विवेक का इस्तेमाल नहीं किया है जिसके चलते अधिसूचना के साथ–साथ अधिग्रहण प्रक्रिया भी विकृत हुई है। इसके अतिरिक्त, विवादित अधिसूचना अस्पष्ट थी और अधिनियम की अनिवार्य आवश्यकता का अनुकरण नहीं किया गया था।

अधिग्रहण की प्रक्रिया धारा 4 के तहत अधिसूचना के साथ शुरू होती है और यहां तक कि अतिशीघ्रता की स्थिति में भी धारा 4 के तहत अधिसूचना का जारी होना एक आवश्यक पूर्वावस्था है। इसका उद्देश्य प्रथमतः तो सार्वजनिक घोषणा और सार्वजनिक नोटिस जारी करना है जिससे स्पष्ट हो जाये कि जमीन घोषणा में उल्लिखित सार्वजनिक उद्देश्य के लिये आवश्यक है तथा दूसरे इससे विभागीय अधिकारियों को धारा 4(2) में दिये गये कार्यों के लिये पर्याप्त अधिकार प्राप्त हो जाता है। यदि धारा 4(1) के तहत अधिसूचना दोषपूर्ण है और अधिनियम की आवश्यकताओं का अनुसरण नहीं करती है तो इस स्थिति में न केवल अधिसूचना बल्कि बाद की कार्रवाई भी विकृत होगी। विचाराधीन केस में जमीन का विवरण काफी रहस्यपूर्ण और अस्पष्ट है। न केवल कोई खसरा नंबर नहीं दिया गया है बल्कि स्थान के विषय में भी साफ जानकारी नहीं है जिससे अधिसूचना अवैध हो जाती है। इसके अतिरिक्त, यह समझ पाना कठिन है कि राज्य सरकार ने किस ठोस आधार पर धारा 4 व 6(1) के तहत जारी अधिसूचनाओं में सार्वजनिक उद्देश्य का भिन्न–भिन्न प्रकार से उल्लेख किया है। इससे दिखता है कि नागरिकों की संपत्ति के विषय में काफी कामचलाऊ रवैया अपनाया गया है।

अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य के लिये किया गया था या नहीं इस विषय में धारा 6(1) के प्रावधान औचित्यपूर्ण नहीं हैं। धारा 6(1) के प्रावधानों ने धारा 6 के तहत घोषणा को तब तक के लिये प्रतिबंधित कर दिया जब तक कि निम्नलिखित में से एक या दूसरी शर्त पूरी नहीं हो जाती है : (1) यदि अधिग्रहण कम्पनी के लिये किया गया है तो अधिग्रहित जमीन के लिये कम्पनी के सेश से, (2) पूरी तरह या अंशतः सार्वजनिक राजस्व से या (3) किसी स्थानीय निकाय द्वारा नियंत्रित अनुदान द्वारा मुआवजा दिया जाये।

बाद की दोनों अवस्थायें उन परिस्थतियों में व्यावहारिक हैं जहां अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य के लिये किया गया है। धारा 6(3) के तहत सार्वजनिक उद्देश्य के लिये जमीन की आवश्यकता की विज्ञप्ति आवश्यक है।

अधिग्रहण के लिये चुनी गयी जमीन तो वस्तुतः सार्वजनिक उद्देश्य के लिये आवश्यक है या नहीं इस विषय में जांच का कार्य न्यायालय नहीं कर सकता था, हालांकि याचिका में जोर देकर कहा गया था कि अधिग्रहण प्रक्रिया में प्रशासन ने अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर काम किया है लेकिन इस दलील को पुष्ट करने के लिये कोई साक्ष्य नहीं दिये गये थे और ऐसा कोई कारण नहीं था जिसके आधार पर संदेह किया जाये कि जमीन का अधिग्रहण रेहन के उद्देश्य से किया जा रहा था या कि उसका प्रयोग उल्लिखित उद्देश्य के लिये नहीं किया जायेगा। इस विषय में संदेह करने का कोई कारण नहीं था कि जमीन का अधिग्रहण उसी कार्य के लिये किया जा रहा है जिसके विषय में अधिसूचना में चर्चा की गयी है और कि उसका प्रयोग उसी उद्देश्य के लिये किया जायेगा।

सार्वजनिक उद्देश्य की मूल विशेषता प्रस्तावित अधिग्रहण की उपयोगिता के बारे में है। सार्वजनिक उद्देश्य की व्यापक व्याख्या करते हुए कहा जा सकता है कि ऐसा कोई भी उद्देश्य जिससे जनता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई भी लाभ पहुंचता हो तो वैसा कोई भी कार्य सार्वजनिक उद्देश्य है। इस प्रकार का कोई भी ऐसा कार्य जो उपयोगी हो और जिससे कोई सार्वजनिक लाभ प्राप्त होता हो वह सार्वजनिक उद्देश्य है।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम के अंतर्गत भूमि–अधिग्रहण की प्रक्रिया :

5ए आपत्तियों की सुनवाई–

1. कोई भी व्यक्ति, जो धारा 4, उपधारा (1) में अधिसूचित जमीन में रूचि

रखता हो, जो कि किसी सार्वजनिक उद्देश्य या कम्पनी के लिये आवश्यक है, वह व्यक्ति अधिसूचना के प्रकाशन के 30 दिन के भीतर जमीन या इलाके की किसी भी जमीन के अधिग्रहण के विषय में आपत्ति उठा सकता है।

2. उपधारा (1) के तहत की जाने वाली प्रत्येक आपत्ति कलैक्टर को लिखित में दी जायेगी और कलैक्टर आपत्तिकर्ता या वादी को सुनवाई का अवसर देगा (व्यक्तिगत रूप से या अपनी ओर से अधिकृत व्यक्ति के द्वारा)। उसके बाद, ऐसी तमाम आपत्तियों को सुनने के बाद और तमाम संबंधित जांच पड़ताल करने के बाद (या तो एक या जमीन के विभिन्न टुकड़ों के लिये कई रिपोर्टें तैयार करके सरकार को भेजेगा, तथा इन रिपोर्टों में आपत्तियों के बारे में उसकी सिफारिशें तथा उसके द्वारा चलायी गयी कार्रवाई का ब्यौरा शामिल होगा, ताकि सरकार उचित निर्णय ले सके)। आपत्तियों पर संबंधित सरकार का फैसला अंतिम होगा।

3. इस धारा के उद्देश्यों के लिये, उस व्यक्ति को रूचि रखने वाला या संबंधित व्यक्ति माना जायेगा जो इस धारा के तहत अधिग्रहण की स्थिति में मुआवजे का दावा करने का अधिकारी होगा।

धारा 5ए को शामिल करने के पीछे विचार यह था कि इससे उन लोगों को अपनी चिंतायें या शिकायतें रखने और उनकी सुनवाई करवाने का अवसर मिल जायेगा जो प्रस्तावित अधिग्रहण से प्रभावित होने वाले हैं।

इस प्रकार, धारा 4 के तहत जारी की गयी किसी भी अधिसूचना से प्रभावित होने वाला कोई भी व्यक्ति अधिसूचना के प्रकाशन के तीस दिन की अवधि के भीतर आपत्तियां पेश कर सकता है। कलैक्टर आपत्तियों की सुनाई करने के बाद अपनी ओर से जांच करेगा और तदनुसार अपनी सिफारिशों के साथ, सरकार को रिपोर्ट देगा। इस रिपोर्ट पर विचार करते हुए सरकार कलैक्टर की सिफारिशों के अनुसार आगे फैसला करेगी। सरकार का फैसला अंतिम होगा। सरकार, कलैक्टर की सिफारिशों को स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं है। लेकिन सरकार द्वारा कलैक्टर की सिफारिशों पर विचार करना महत्वपूर्ण है।

लेकिन अधिनियम, कलैक्टर द्वारा आपत्तियों के निराकरण के लिये अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के विषय में शांत है। विभिन्न राज्यों ने आपत्तियों के नि. राकरण के लिये दिशा–निर्देश निर्धारित किये हैं। सुप्रीम कोर्ट की मान्यता है कि जहां मूल अधिनियम किन्हीं पहलुओं के विषय में शांत हों वहां दूसरे सं. बंधित नियमों का सहारा लिया जाये।

उत्तर प्रदेश द्वारा निर्धारित किये गये दिशा–निर्देश इस प्रकार हैं :

अधिसूचना क्रमांक 791 / I.501, तारीख 19 नवंबर, 1923, के क्रम में यहां सामान्य सूचना के लिये अधिसूचित किया जाता है कि परिषद में निहित सरकार ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 की धारा 55 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अनुरूप धारा 5ए के कार्यान्वयन से संबंधित अधिकारियों के दिशा–निर्देश के लिये निम्नलिखित नियम बनाये हैं:

1. धारा 5ए के भाग (2) के तहत आपत्तिकर्ता को अधिकार है कि वह न केवल लिखित आपत्ति बल्कि साक्ष्य भी उपलब्ध करा सकता है।

2. धारा 5 के तहत आपत्तियों की सुनवाई करने की जिम्मेदारी कलैक्टर की होगी (धारा 3 में परिभाषित, भाग (ब) के अनुसार उसे व्यक्तिगत रूप से सुनवाई करनी होगी)।

3. जब कलैक्टर को निश्चित अवधि के भीतर आपत्ति प्राप्त हो जाती है तो वह आपत्तिकर्ता को नोटिस के द्वारा सूचित करेगा कि वह कलैक्टर द्वारा निर्धारित तारीख पर उसके सामने स्वयं या अपने प्रतिनिधि के जरिये उपस्थित हो तथा चाहे तो वह साक्ष्य भी ला सकता है जिन पर वह विश्वास करता है। सुनवाई या जांच का नोटिस उस सरकारी विभाग या सरकार के अधिकारी को भी भेजा जायेगा जिसके माध्यम से अधिग्रहण किया जाना है, और यदि वह अधिकारी चाहे तो स्वयं भी अपने पक्ष में साक्ष्य लेकर प्रस्तुत हो सकता है।

4. किसी भी पक्ष के निवेदन पर कलैक्टर धारा 14 के तहत प्राप्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए गवाहों की पेशी और दस्तावेजों का प्रस्तुतीकरण सुनिश्चित कर सकता है। गवाहों को कोई शपथ नहीं दिलवाई जायेगी।

5. गवाहों के वक्तव्यों को दर्ज किया जायेगा और उन पर कलैक्टर के हस्ताक्षर के बाद उन्हें रिकार्ड में शामिल कर दिया जोयगा।

6. यदि आवश्यक हो तो कलैक्टर समय–समय पर सुनवाई स्थगित भी कर सकता है।

7. सारी आपत्तियों की सुनवाई और उनके पक्ष में प्रस्तुत किये गये सभी साक्ष्यों तथा प्रस्तावित अधिग्रहण के समर्थन में प्रस्तुत किये गये साक्ष्यों को दर्ज करके और आवश्यक हो तो आगे जांच करके केस स्थानीय सरकार के सुपुर्द कर दिया जायेगा। उसकी (कलैक्टर की) रिपोर्ट के साथ कार्रवाई का रिकार्ड भी संलग्न होगा।

कलैक्टर के सामने पेश की जाने वाली आपत्तियों का बहुत महत्व है और उनके निर्धारण के विषय में बेहद सावधानी रखने की जरूरत है, क्योंकि उस अधिसूचना के विषय में आगे जो भी आपत्तियां उठायी जायेंगी वह इसी पर आधारित होंगी। यह जांच करना भी महत्वपूर्ण है कि जिस उद्देश्य के लिये जमीन का अधिग्रहण किया जा रहा है उसके लिये इलाके में कोई दूसरी जमीन भी उपलब्ध हो सकती है या नहीं और यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि आपत्तियां नोटिस जारी होने की तारीख के तीस दिन के भीतर दाखिल कर दी जायें। तीस दिन की अवधि समाप्त हो जाने के बाद दाखिल होने वाली किसी भी आपत्ति पर विचार नहीं किया जायेगा।

धारा 5ए एक अनिवार्य चरण है और उसका अनुसरण किया जाना आवश्यक है। यदि धारा 5ए का अनुसरण नहीं किया गया है तो अधिग्रहण को दोषपूर्ण माना जायेगा। इस धारा का एकमात्र अपवाद धारा 17 द्वारा राज्य के ऐसे अधिग्रहण से संबंधित है जिसमें राज्य को अधिग्रहण की आपात आवश्यकता है।

धारा 6, 4, 17(1) और 17(4)

धारा 17(1) के तहत अतिशीघ्रता उपबन्ध की व्यवस्था/धारा 4(1) में दिये गये कदमों के अनुसरण की अनिवार्यता/धारा 17(4) के तहत शक्तियों के उपयोग के लिये धारा 4(1) के तहत तीन कदमों का अनुसरण अपरिहार्य है लेकिन यह आवश्यक नहीं था कि यह तीनों कदमों धारा 6(1) के तहत घोषणा किये जाने से पहले सम्पन्न कर लिये जायें। यह आवश्यक था कि धारा 4(1) ओर 6(1) के तहत अधिसूचनाओं के प्रकाशन के बीच कम से कम एक दिन का अंतराल हो। जमीन के अधिग्रहण और आपात स्थिति पर विचार करने तथा धारा 4(1) के तहत अधिसूचना और धारा 6 के तहत घोषणा प्रकाशित करने व उसे गजेट में प्रकाशित करवाने कि, प्रस्तावित अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया जा रहा है, के लिये समुचित अधिकार प्राप्त सरकार को कदम उठाने चाहिये। समाचार पत्रों में प्रकाशन और नोटिस की विषयवस्तु को संबंधित स्थानों या व्यक्तियों तक पहुंचवाने का कार्य सरकार द्वारा अधिकृत कलैक्टर और उसके मातहत स्टाफ का होगा। जबतक ऐसा नहीं किया जाता है तब तक सरकार धारा 17 की उपधारा (1) और (2) में दी गयी शक्तियों के अनुरूप सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये सुगमता पूर्वक आगे नहीं बढ़ सकेगी।

आवश्यक शर्तों की पूर्ति के बाद धारा 6 के तहत अधिसूचना/इसके बाद की प्रक्रिया विकृत नहीं होगी। धारा 5ए के तहत जांच की गयी और आपत्तियों पर समुचित सुनवाई की गयी, एडीशनल कलैक्टर ने अधिग्रहण की सिफारिश की थी, और इस संदर्भ में अपनी रिपोर्ट सौंप दी थी और उसके बाद सरकार ने धारा 6 के तहत अधिसूचना जारी कर दी। ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 6 के प्रावधानों का उल्लंघन किया गया है और उसके बाद चलायी गयी कार्रवाई दोषपूर्ण थी।

धारा 4 और 6 के तहत सार्वजनिक उद्देश्य के लिये अधिसूचना/1985 में धारा 6 के तहत 1980 में धारा 4 के तहत प्रकाशित घोषणा/एक रिट याचिका में आरोप लगाया गया था कि अधिसूचना 3 वर्ष बाद प्रकाशित की गयी थी और इसलिये उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने अधिसूचना को यह कहते हुए वैध माना कि कुछ भूस्वामियों ने आगे की कार्रवाई को रोकने के संबंध में स्थगनादेश ले लिया था। जब धारा 5ए के तहत जांच करने का कार्य समुचित प्रकार कर लिया गया, तो धारा 6 के तहत जारी की गयी वैध अधिसूचना के औचित्य के विषय में संबंधित अधिकारी कोई कदम नहीं उठा सकता है। परिणामस्वरूप कुछ व्यक्तियों के विषय में दिया गया स्थगनादेश दूसरों के विषय में भी मान्य था। इस तथ्य को देखते हुए कि धारा 4 के तहत जारी की गयी अधिसूचना और धारा 6 के तहत प्रकाशित की गयी घोषणा संपूर्णात्मक थी जब तक धारा 6 की घोषणा को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर लिया जाता है तब तक बिल्कुल आगे नहीं बढ़ा जा सकता है मानो पूरी अधिसूचना खारिज कर दी गयी हो।

आपत्तियों की सुनवाई हो चुकने के बाद सरकार घोषणा कर देगी कि सार्वज. निक उद्देश्य के लिये जमीन का अधिग्रहण कर लिया गया है। इस घोषणा के बाद सरकार कलैक्टर को निर्देश देगी कि वह अधिसूचना में उल्लिखित जमीन का अधिग्रहण कर ले। अधिग्रहण के बाद कलैक्टर जमीन का सीमांकन करेगा। बहुत संभव है कि कई मामलों में धारा 4 के तहत नोटिस प्रकाशित होने से भी पहले ही ऐसा कर लिया गया हो।

जमीन का सीमांकन हो चुकने के बाद कलैक्टर एक नोटिस जारी करेगा जिसमें सभी सम्बद्ध पक्षों से अपील की जायेगी कि वह मुआवजे के लिये आवेदन कर दें क्योंकि सरकार जमीन का अधिग्रहण करने वाली है। मुआवजे का दावा नोटिस जारी होने के पंद्रह दिन के भीतर कलैक्टर के सामने पेश करना होगा।

कलैक्टर दावेदारों से ऐसे व्यक्तियों की सूची भी मांग सकता है जो संपत्ति से अप्रत्यक्ष रूप से संबद्ध हो सकते हैं।

धारा 5ए के तहत आपत्तियों के निपटारे के बाद अपनायी जाने वाली प्रक्रिया केवल मुआवजे के पहलू से संबंधित है। इसका अर्थ है कि किसी भी स्थिति में अधिग्रहण तो अवश्य होना है। इसलिये यह आवश्यक है कि कलैक्टर के सामने जो आपत्तियां पेश की जायें वह सुविचारित और सावधानीपर्वूक तैयार की गयी हों।

यदि आपत्तियों की सुनवाई करने के बाद कलैक्टर घोषणा कर देता है तो असहमति की स्थिति में आगे की प्रक्रिया यह होगी कि उच्च न्यायालय में राज्य के विरूद्ध वाद दायर कर दिया जाय।

कानूनन प्रावधान है कि अधिसूचना को आधिकारिक गजेट में प्रकाशित किया जाये जिसमें सरकार के इस प्रस्ताव का उल्लेख हो कि सार्वजनिक उद्देश्य के लिये जमीन का अधिग्रहण किया जाने वाला है। इसमें आगे कहा गया है कि कलैक्टर इस विषय में एक नोटिस ऐसे स्थान पर जारी करे जो सबके लिये सुविधाजनक तथा उसी क्षेत्र में स्थित हो। धारा के दूसरे भाग जिसमें एक सुविधाजनक स्थान पर नोटिस जारी करने की चर्चा की गयी है, का उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि इससे अधिग्रहण से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों को सूचना मिल जायेगी। नियम 1 जो कि विचार करने के लिये प्रासंगिक है, वह इस प्रकार है :

> जब अधिनियम की धारा 4 के तहत कोई भी अधिसूचना प्रकाशित की जा चुकी है लेकिन धारा 17 के प्रावधान लागू नहीं किये गये हैं और कलैक्टर ने धारा 4(1) के प्रावधानों के अनुरूप संबद्ध पक्षों को नोटिस भेज दिया हो तो इस संदर्भ में नोटिसों में आपत्तियों के लिये तय तारीख तक आने वाली आपत्तियों को धारा 5ए के तहत कलैक्टर पहले अपनी कार्रवाई में दर्ज करेगा। दूसरे, कलैक्टर इस बात पर भी विचार करेगा कि आपत्तियां इन नियमों के अनुसार विचारणीय हैं या नहीं।
>
> . . . . इसलिये, स्पष्ट है कि धारा 4(1) को नियम 1 के साथ पढ़ने पर यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 4 के तहत प्रत्येक संबंधित व्यक्ति को व्यक्तिगत नोटिस भेजा जाये और किसी से नोटिस के अभाव में अधिग्रहण की कार्रवाई अवैध होगी।
>
> . . . . नोटिस देने के तरीके के विषय में स्वयं धारा 4(1) में ही उल्लेख किया गया है कि अधिसूचना की विषयवस्तु को क्षेत्र के

किसी सुविधानजनक स्थान पर प्रकाशित कर दिया जाये।

धारा 5ए(2) के तहत सुनवाई का अधिकार अनुल्लंघनीय है और भूमि अधिग्रहण अधिकारी को भूस्वामी या संबंधित व्यक्ति को सुनवाई का अवसर देने की व्यवस्था करनी होगी। अदालत द्वारा श्याम नंदन प्रसाद बनाम बिहार राज्य मामले में यह व्यवस्था दी गयी थी कि भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने नोटिस जारी करने के विषय में कोई लापरवाही नहीं की थी लेकिन स्वयं संबंधित पक्षों ने ही इस विषय में पेश होने को प्राथमिकता नहीं दी थी इसलिये सुनवाई का अवसर नहीं मिलने के बारे में भूमि अधिग्रहण अधिकारी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है

भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 में समय समय पर किये गये प्रमुख संशोधन

• *समाजवादी समाज के स्वप्नदृष्टा नेहरू के समय में भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम 1962 पारित किया गया। इसी वर्ष सर्वोच्च न्यायालय ने एक वाद का निस्तारण करते हुए व्यवस्था दी थी कि* ***टे. क्सटाइल उपकरणों की उत्पादक कंपनी को ज़मीन उपलब्ध कराना 'सार्वजनिक उद्देश्य' नहीं हो सकता।*** *फलतः नेहरू की सरकार ने अधिनियम में संशोधन करके ऐसी निजी कंपनियों को भी सार्वजनिक उद्देश्य की कोटि में ला दिया जो सार्वजनिक उद्देश्य हेतु उत्पादन करने जा रही हैं। इस प्रकार* ***नेहरू युगीन राज्य यह कानूनी हक हासिल करने में कामयाब रहा कि वह निजी उद्योगों, कंपनियों के लिए भी सार्वजनिक उद्देश्य की कोटि में भूमि अधिग्रहण कर सकता है।***

• *भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम 1967– भूमि–अधिग्रहण के संदर्भ में अलग–अलग विज्ञप्तियों का जारी होना भी विवादों का स्रोत रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने 1966 में व्यवस्था दी थी कि ज़मीन के अधिग्रहण के संदर्भ में जो मूल उद्देश्य निर्धारित या घोषित किया गया था, उस उद्देश्य को बदलना गैर कानूनी है। इस फैसले के बाद बड़ी संख्या में अधिग्रहणों को रोक देना पड़ा क्योंकि सरकार बार–बार अपने उद्देश्यों में बदलाव करती रहती थी तथा तत्संबंधित विज्ञप्तियाँ बदलती रहती थीं। इस स्थिति से निपटने के लिए* ***1967 में राज्य की तरफ से एक संशोधन किया गया जिसका आशय था कि अधिनियम की मौजूदा रूपरेखा में विज्ञप्ति को उसके प्रकाशन के तीन वर्ष की अवधि के भीतर ही बदला जा सकता है। जिसका अर्थ था भूमि–अधिग्रहण के उद्देश्यों में बदलाव को एक कानूनी आधार मिल जाना।***

किये हैं। साथ ही –सार्वजनिक उद्देश्य' या 'लोक हित' को भी व्याख्यायित किया है।

इस प्रकार के तमाम संशोधनों में आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा किया गया संशोधन उल्लेखनीय है क्योंकि इसमें सार्वजनिक उद्देश्य के मूल आशय को समझकर उसे राज्य अधिनियम में समाहित किया गया। **आंध्र प्रदेश सरकार के इस संशोधन में सार्वजनिक उद्देश्य की कोटि में केवल वही मामले शामिल किये गये हैं जहां ज़मीन की आवश्यकता गरीबों के लिए आवासीय सुविधाओं के निर्माण, विस्तार या सुधार के लिए है।**

भूमि अधिग्रहण (संशोधन) बिल 2009 के लिए प्रस्तावित प्रमुख संशोधन

- सरकार की भूमिका केवल सरकारी परियोजनाओं हेतु भूमि–अधिग्रहण तक ही सीमित होगी तथा सार्वजनिक उद्देश्य से तात्पर्य सरकारी परियोजनाओं से होगा।

- भू–स्वामियों के अलावा बटाईदारों, खेत मज़दूरों तथा ऐसे गैर कृषि मज़दूर जिनकी जीविका भूमि अधिग्रहण से प्रभावित होगी, भी मुआवजे के हकदार होंगे। ऐसे भूमिहीन ही मुआवजे के हकदार होंगे जो वहां पर कम से कम 5 साल से रह रहे हों।

- भूमि–अधिग्रहण से पूर्व प्रस्तावित भूमि–अधिग्रहण का सामाजिक–प्रभाव आकलन (S.I.A.) विशेषज्ञों द्वारा कराया जायेगा।

- सरकार द्वारा निजी उद्यमों हेतु अधिग्रहीत की गयी भूमि के मुआवजे का आधा भाग संबंधित कंपनी/उद्योग के शेयर्स या डिवेंचर्स के रूप में भुगतान किया जा सकता है। बशर्ते वह कम्पनी शेयर्स जारी करे।

- मुआवजे का भुगतान बाजार दर से किया जायेगा जिसका निर्धारण जिला कलेक्टर करेगा। (यदि कृषि भूमि इरादतन अधिग्रहीत की गयी है)।

- भूमि के बदले भूमि को प्राथमिकता दी जायेगी। ऐसा न हो पाने की स्थिति में बाज़ार दर से 60 प्रतिशत बढ़ाकर मुआवजों में सांत्वना राशि भी दी जायेगी।

- लैण्ड एक्युजेशन कमपेंसेशन डिसप्यूट सेटिलमेंट अथारिटी (L.A.C.D.S.A.) का गठन किया जायेगा। राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार द्वारा अधिग्रहीत की गयी भूमि के संबंध में यह राज्य तथा केन्द्र दोनों के लिए अलग अलग होगा।

- इस अधिनियम के तहत अधिग्रहीत की गयी भूमि का स्थानांतरण सार्वज. निक उद्देश्य के अलावा अन्य किसी उद्देश्य हेतु नहीं किया जा सकता। यदि सरकार द्वारा अधिग्रहीत भूमि किसी और को दी जाती है तो उस पर

होने वाले लाभ का 80 फीसदी सरकार या यों कहें कि भूमिपति किसान को दिया जायेगा।

- अधिग्रहीत की गयी भूमि का उपयोग यदि 5 वर्षों के अंदर नहीं किया जाता तो वह संबंधित सरकार को वापस कर दी जायेगी।
- कोई कम्पनी अपनी जरूरत की 70 फीसदी जमीन की व्यवस्था स्वयं करेगी, बाकी 30 फीसदी जमीन सरकार उपलब्ध करायेगी।

इन प्रस्तावित संशोधनों का वैचारिक आधार क्या है? इन सवालों का जवाब कहां से मिलेगा–

- आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक, छोटे एवं सीमांत किसानों से खेतिहर ज़मीन लेकर उद्योगपतियों के देने के पीछे नीतिगत आधार क्या है?
- ज़मीन का कानूनी मालिकाना शासन के पास होगा या उद्योगपति के पास?
- सीलिंग एक्ट को समाप्त करके ज़मीन पर नियंत्रण चंद पूंजीपतियों के हाथ में रहेगा या सीलिंग एक्ट लागू करके अतिरिक्त ज़मीन भूमिहीन ज़रूरतमंदों को दी जायेगी?
- बढ़ती बेरोज़गारी, घटते सकल कृषि उत्पाद और बढ़ती पलायन की दर को देखते हुए 'अनुपस्थित ज़मींदार' की कब्ज़े वाली भूमि के मुद्दे पर क्या नीति है?
- निर्यातोन्मुखी उत्पादन के लिए माइनिंग के बारे में क्या नीति होगी?
- 'कारपोरेट फार्मिंग' भी सार्वजनिक उद्देश्य में होगा या नहीं?

साथ ही साथ–

हमें इस बारे में भी नीतिगत घोषणा की ज़रूरत है कि:

- विकास का लक्ष्य क्या है? 'लोकहित' तथा 'सार्वजनिक उद्देश्य' क्या है?
- भूमि संबंधी लेन देन की प्रक्रिया, लोकहित के निर्धारण, प्रकृति–मनुष्य के रिश्तों के निर्धारण के तौर–तरीके क्या होंगे? इन प्रक्रियाओं में आम आदमी का क्या स्थान होगा?
- भूमि अधिग्रहण अधिनियम की बजाय भूमि–अधिकार अधिनियम क्यों नहीं

बनाया जा सकता? भूमि–अधिकार अधिनियम के ही अन्तर्गत आवश्यकतानुसार तथा जनहित में भूमि–अधिग्रहण की व्यवस्था क्यों नहीं की जा सकती?

- पारिस्थितिकी तथा भौगोलिक चुनौतयों को ध्यान में रखकर एक टिकाऊ तथा दूरगामी विकास की अवधारणा विकसित क्यों नहीं की जा सकती और इसी व्यावहारिक–वैज्ञानिक–मानवीय विकास नीति के अन्तर्गत ही पुनर्वास नीति को क्यों नहीं रखा जा सकता?

कौन देगा जवाब?

- भाखरा बाँध, बोकारो, धनबाद, जादुगुडा, भिलाई के विस्थापितों के मुआवजे तथा पुनर्वास का मामला अभी तक क्यों नहीं हल हो पाया?
- संविधान के पांचवें अनुभाग का लगातार मज़ाक उड़ाते हुए आदिवासियों की भूमि सरकार, कंपनियों, पूंजीपतियों तथा भू–माफियाओं द्वारा कब्जायी गयी/जा रही है? क्यों?
- पेसा कानून को अँगूठा दिखाते हुए मित्तल, भूषण, जिंदल, पोस्को, वेदांत, टाटा जैसी कंपनियां बिना ग्रामसभा की सहमति के कैसे ज़मीनों पर कब्ज़ा करने की तरफ बढ़ रही हैं?
- जिन कंपनियों के एम.ओ.यू. के 5 वर्ष बीत गये और वे काम नहीं कर पाये उन्हें उड़ीसा, झारखंड समेत तमाम हिस्सों से क्यों नहीं भगाया जा रहा है तथा उनसे ज़मीने क्यों नहीं वापस ली जा रही हैं?
- ऐसी खदानें जहां खनन बंद हो चुका है क्या उन्हें सरकारी मानकों के मुताबिक बंद किया गया है? क्या वहाँ वन लगाये गये हैं? अब इन परित्यक्त ज़मीनों का मालिक कौन है? क्या यह पहाड़, खदानें, वन वहां के मूलवासियों को वापस दी जा रही हैं? सूखे झरने, नदियों, वनों की भरपाई के बारे में क्या नीति है?
- कंपनियों/उद्योगों द्वारा आवश्यकता से अधिक हथियायी गयी ज़मीनों के बारे में क्या नीति है?
- बन्द हो गये उद्योगों/उपक्रमों/कारखानों की ज़मीनों के बारे में क्या नीति है?

क्या इस प्रस्तावित संशोधन के संदर्भ में–

- विभिन्न समय में विभिन्न योजनाओं/परियोजनाओं के कारण विस्थापित हुए लोगों के संगठनों से बातचीत की गयी?
- कारपोरेट घरानों तथा राजनैतिक दलों से बातचीत सरकार के घोषित एजेण्डे में है फिर विस्थापितों से बातचीत न करना, उनके सुझाव न सुनना कितना लोकतांत्रिक है?

और–

- खनिज कानून में व्यवस्था है कि जिनसे जमीन लेंगे उन्हें 26 फीसदी हिस्सेदारी शेयर के रूप में दी जायेगी। वह तब मिलेगा जब लाभ होगा। कम्पनी को कभी लाभ होगा ही नहीं/फिर?
- 70 फीसदी जमीनें हासिल करने के लिए कम्पनी किसी भी प्रकार के हथकण्डे अपनायेगी (लालच, प्रलोभन, हिंसा, कानूनों की अवहेलना, गुण्डागर्दी) इस पर नकेल कैसे लगेगी?

एक दौर था जब अठारह एकड़ से ज्यादा जमीन यदि किसी के पास होती थी तो उसे अतिरिक्त भूमि कहा जाता था। सरकार उस जमीन को सीलिंग एक्ट के तहत जब्त करने की हकदार थी। परंतु आज हजारों–हजार एकड़ जमीन हथिया कर करोड़ों–अरबों रुपये के मुनाफा कमाने की छूट कम्पनियों, कारपोरेट्स को देने के लिए भूमि कानूनों में बदलाव किया जा रहा है। प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण संशोधन भी उसी का एक प्रमुख हिस्सा है। सरकार ऐसी नीति बनाती हुई दिख रही है जिससे कि जमीन धन कुबेरों की मुट्ठी में कैद जो जाय और जमीन पर बरसों– पीढ़ी–दर–पीढ़ी से खेती करके अपनी जीविका चलाने वाले उससे वंचित कर दिये जायँ। अभी हाल में हरियाणा राज्य द्वारा की गयी पहल इसका मुकम्मल सुबूत है।

प्रलोभन का विकास:

हरियाणा राज्य सरकार ने अपनी नयी भूमि–अधिग्रहण नीति की घोषणा करके तथा इसे 7 सितंबर 2010 से प्रभावी बनाने का ऐलान करते हुए प्रलोभनों की एक नयी फेहरिस्त जारी कर दी है। इसके तहत–

- 'नो लिटिगेशन' प्रोत्साहन राशि उन भू–स्वामियों को दी जायेगी जो

मुआवजे के संदर्भ में कोई वाद दायर नहीं करेंगे। **(न्याय व्यवस्था पर डगमगाती आस्था).**

- यदि हुडा, एच.एस.आई.आई.डी.सी., हरियाणा कृषि विपणन बोर्ड द्वारा किसी गाँव की जमीन अधिग्रहीत की जाती है तो मुआवजा राशि का 2 प्रतिशत भाग उस गाँव के सामुदायिक विकास या इन्फ्रास्ट्रचर खड़ा करने पर खर्च किया जायेगा। **(दलाली का 'सार्वजनीकरण).**

- मुआवजा राशि का एक प्रतिशत भाग उस स्थान के कृषि मजदूरों के कौशल बढ़ाने पर खर्च किया जायेगा तथा वहां लगने वाले उद्योगों में इन्हें रोजगार देने को प्राथमिकता दी जायेगी। **(लालीपाप).**

- मकानों के अधिग्रहण की स्थिति में मकान मालिकों को 20 प्रतिशत सस्ते दर पर आवासीय प्लाट उपलब्ध कराये जायेंगे। **(कफन की फिकर).**

- भूमि अधिग्रहण के बाद भू–स्वामी को 33 वर्षों तक 21 हजार रुपये प्रति एकड़ की दर से रायल्टी दी जायेगी। इस रायल्टी दर में प्रतिवर्ष 750 रुपये की बढ़ोत्तरी की जायेगी। यदि यह भूमि–अधिग्रहण निजी कम्पनियों के लिये किया जाता है तो यह रायल्टी दर दो गुनी होगी। **(चकमा).**

- पूरे राज्य को 5 क्षेत्रों में बांटा जायेगा और प्रत्येक क्षेत्र की न्यूनतम मुआवजा राशि अलग–अलग होगी। **(विकास की असमानता को स्वीकृति).**

ऐसा लगता है कि यह प्रलोभन सरकार द्वारा इस इरादे से दिये जा रहे हैं कि किसी भी प्रकार किसानों को बहला–फुसलाकर उनकी जमीनें कम्पनियों को सहजता से दी जा सकें।

अतएव आज जरूरत हैः–

- भूमि–अधिग्रहण को तत्काल प्रभाव से रोका जाय।
- भूमि–अधिग्रहण अधिनियम की समीक्षा की जाय।
- अभी तक किये गये भूमि–अधिग्रहण पर श्वेव–पत्र जारी किया जाय।
- भूमि–अधिग्रहण के सवाल पर लोगों की राय ली जाय।

- भूमि–अधिग्रहण के संदर्भ में 'जन मत संग्रह' कराया जाय।
- जमींदारी विनाश अधिनियम, सीलिंग एक्ट, सी.एन.टी. एक्ट जैसे कानूनों को सख्ती से लागू किया जाय।
- संविधान के अनुच्छेद 5 की अवहेलनाओं के दोषियों के विरूद्ध दण्डात्मक कार्यवाही की जाय।

मैं चाहता हूँ
मिट्टी
आग
रोटी
शक्कर
गेहूँ
समुन्दर
किताबें
और
ज़मीन
सभी मनुष्यों के
के लिए

—पाब्लो नेरुदा

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस) प्रतिबद्ध और अनुभवी लोगों का ऐसा समूह है जो स्थानीय एवं व्यापक स्तर पर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को मजबूत करने की दिशा में प्रयत्नशील है। इस क्रम में जीवनयापन के लिए जूझ रहे व्यक्तियों एवं समुदायों और अपनी अस्मिता को बचाए रखने तथा जनतांत्रिक मूल्यों के लिए संघर्षरत जन समूहों की जानकारी एवं ज्ञान में बढ़ोत्तरी करना पीस का मुख्य सरोकार रहा है। विगत कुछ वर्षों से पीस समान सोच वाले समूहों और जन संगठनों के बीच संवाद की प्रक्रिया चला कर व्यापक स्तर पर चलने वाले जन आंदोलन और गठबंधन की प्रक्रिया को भी मजबूत करने हेतु प्रयत्नशील है। मौजूदा पुस्तिका की तर्ज पर ही हमने पहले भी आम जन जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर शिक्षण सामग्री का निर्माण व प्रकाशन किया है। इस क्रम में कुछ महत्वपूर्ण सामग्री निम्न हैं:

- ज्ञान की पूंजी पर पूंजी का शिकंजा
- पूंजी के निशाने पर पानी
- बाजारीकरण के दस साल
- भारतीय अर्थव्यवस्था की हक़ीक़त
- The Noose is Tightening - AOA (July Framework)
- Gatts Primer
- नकेल कसती जा रही है
- कहीं पर निगाहें, कहीं पर निशाना : वन अधिकार अधिनियम 2006
- उड़ीसा के जनसंघर्ष : सबक और चुनौतियाँ
- PEOPLE'S STRUGGLES OF ORISSA : Lessons and Challenges
- परमाणु ऊर्जा : सस्ती साफ बिजली या महाविनाश को बुलावा!
- हिमाचल प्रदेश के जनसंघर्ष : न्याय के लिए बढ़ते कदम

PEACE

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर

A–124/6, दूसरी मंजिल, कटवारिया सराय,
नई दिल्ली–110016
फोन व फैक्स: 011–26968121/26858940
ईमेल: peaceact@vsnl.com